राधास्वामी दयाल की दया
राधास्वामी सहाय

राधास्वामी मत संदेश

(परम गुरु हुजूर महाराज)

— प्रकाशक —
राधास्वामी सतसंग सभा, दयालबाग़ (आगरा)

राधास्वामी संवत् १४२
सन् १९६० ई०

UNIVERSAL LIBRARY
OU_186815
UNIVERSAL LIBRARY

राधास्वामी दयाल की दया
राधास्वामी सहाय

राधास्वामी मत संदेश

(परम गुरु हुज़ूर महाराज)

प्रकाशक —

राधास्वामी सतसंग सभा, दयालबाग़ (आगरा)

राधास्वामी संवत १४२
सन १९६० ई०

(*Copyright Reserved*)

First Edition	1948	1000
Second Edition	1960	1000

PRINTED BY BABU RAM JADOUN, M.A.
AT THE DAYALBAGH PRESS, DAYALBAGH, AGRA

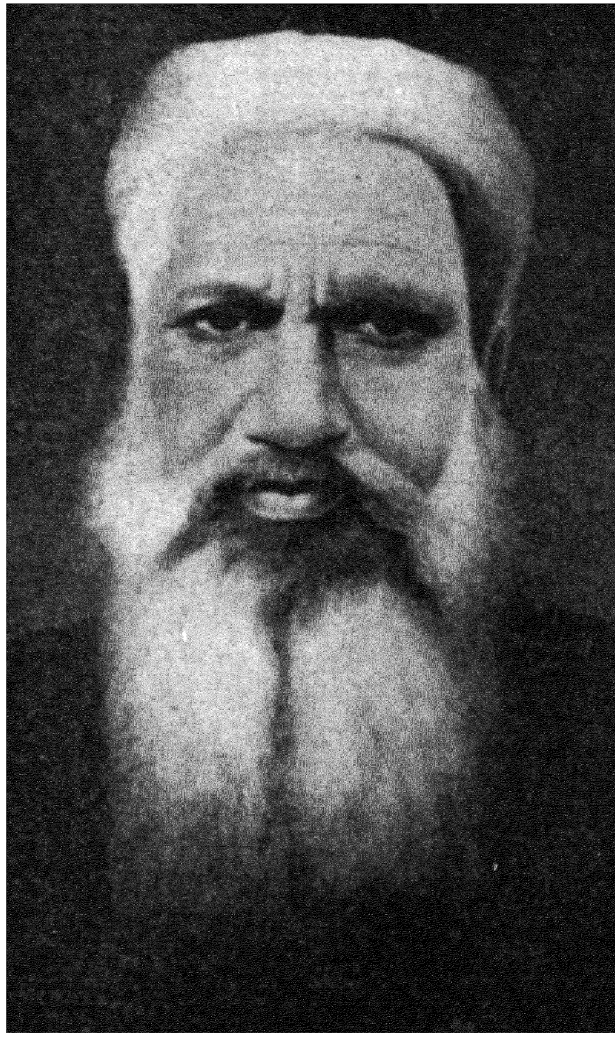

परम गुरु हुजूर महाराज

निवेदन

हमारे मत के दूसरे आचार्य परम गुरु हुजूर महाराज ६ दिसम्बर सन् १८९८ ई० को गुप्त हुए थे। उन्होंने अपने समय में राधास्वामी मत पर बहुत सी पुस्तकें लिखने की मौज फरमाई जिनमें सन्तमत व राधास्वामी मत के सिद्धान्त बड़े आसान तरीके से वर्णन किये गये हैं। 'राधास्वामी मत संदेश' भी उन्हीं पुस्तकों में से एक है।

इस पुस्तक में राधास्वामी मत के सिद्धान्त बड़ी सरल भाषा में बयान किये गये हैं। आशा है कि हुजूर राधास्वामी दयाल का संदेश सुनने व राधास्वामी मत समझने की अभिलाषा रखने वाले सज्जन इस पुस्तक का पाठ करके परमार्थी लाभ उठाएंगे। यह पुस्तक जिज्ञासुओं के लिये विशेष लाभदायक है। पहले पहल यह पुस्तक "प्रेम पत्र" पाक्षिक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी और अब भी प्रेम पत्र भाग २ में शामिल है।

राधास्वामी सतसंग सभा, दयालबाग की तरफ से "राधास्वामी मत संदेश" प्रकाशित करने का प्रबंध हुजूर महाराज के गुप्त होने के ५० साल बाद किया गया था और सन् १९४८ ई० दिसम्बर में यह पुस्तक प्रकाशित हुई थी। अब इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया जाता है।

दयालबाग (आगरा)
१४ फरवरी १९६० ई०

प्रकाशक

राधास्वामी दयाल की दया राधास्वामी सहाय

राधास्वामी मत संदेश

जो लोग कि सच्चे खोजी सत्त पद के हैं और अपने जीव के पूरे और सच्चे उद्धार के वास्ते दर्द के साथ सच्ची ख़्वाहिश रखते हैं, यानी सच्चे परमार्थी हैं, और दुनिया की तरफ़ से उनके दिल में किसी क़दर उदासीनता है, उनके वास्ते सत्त मत का भेद इस बचन में कहा जाता है।

राधास्वामी मत क्या है

१—राधास्वामी मत को संत मत कहते हैं और यही मत सत्त मत है यानी सत्त पद को लखाता है और उसका भेद समझाता है।

राधास्वामी नाम की सिफ़त

२—'राधास्वामी' नाम कुल और सच्चे मालिक का नाम है जो ईश्वर, परमेश्वर और ब्रह्म, पारब्रह्म और आत्मा, परमात्मा और ख़ुदा और निर्वाण[1]' पद सब का निज कर्ता है।

३—यह नाम किसी का धरा हुआ नहीं है। इसको कुल मालिक ने मेहर और दया से आप प्रगट किया, यानी यह नाम ऊँचे देश में बग़ैर मदद ज़बान या बाजे के आप बोल रहा है और उस धुन को बड़भागी अभ्यासी अपने घट में सुनते हैं।

४—जो कोई इस नाम को उसके नामी और धाम और वहाँ पहुँचने के रस्ते का भेद लेकर प्रेम के साथ गावेगा या उसका सुमिरन

१—बौद्धों का सिद्धान्त पद या लक्ष्य।

या ध्यान करेगा या चित्त लगाकर उसकी धुन को अंतर में सुनेगा, वही कुल मालिक राधास्वामी दयाल की दया और सतगुरु की कृपा से भवसागर के पार जावेगा और परम आनन्द को प्राप्त होकर काल के क्लेश और जन्म मरण के दुःखों से बच जावेगा।

अर्थ राधास्वामी नाम के

५—'राधा' नाम आदि सुरत यानी आदि धुन का है जो आदि शब्द से प्रगट हुई है और 'स्वामी' नाम कुल मालिक यानी आदि शब्द का है।

६—शब्द यानी आवाज प्रथम जहूर यानी प्रकाश कुल का है और यही सब रचना का करता है।

७—या इस तरह समझो कि राधा यानी धुन उस चैतन्य धार का नाम है जो अनामी पुरुष स्वामी से आदि में प्रगट हुई और उसी को आदि सुरत कहते हैं और 'स्वामी' नाम उस पुरुष यानी कुल मालिक का है जो अकह और अपार और अनन्त[1] और अगाध[2] और अनाम है और जिसके चरनों से धारा यानी धुन आदि में प्रगट हुई।

८—आदि धारा यानी धुन अथवा आदि सुरत कुल रचना की करता है और इस वास्ते वही कुल रचना की माता है और स्वामी यानी आदि शब्द कुल रचना का पिता है।

९—जब यह धुन या धारा उलट कर स्वामी या शब्द की तरफ मुतवज्जह होवे, तब इस धारा का नाम राधा और आशिक यानी प्रेमी और भक्त है और शब्द यानी स्वामी प्रीतम और माशूक है।

१०—जब तक कि यह धारा या धुन जारी है, तब तक वह और शब्द दो समझे जाते हैं और जब कि वह धारा उलट कर शब्द यानी स्वामी में समा जावे, तब एक हो गये यानी दो का फर्क जाता रहा।

१—जिसका अन्त न हो। २—जिसकी थाह न पाई जा सके।

खुलासा हाल रचना का

११—जो धारा कि आदि में प्रगट हुई, वह उतर कर किसी कदर फासले पर ठहरी और वहां उसने मंडल बांध कर रचना करी। इस स्थान का नाम अगम लोक है और जो धारा कि वहाँ आकर ठहरी, उसका नाम अगम पुरुष है, यानी राधास्वामी दयाल के तख्त का स्थान है।

१२—जब अगम लोक की रचना हो गई, तब वहां से भी धारा प्रगट होकर नीचे उतरी और किसी कदर फासले पर ठहर कर और वहां मंडल बाँध कर उसने रचना करी। इसका नाम अलख लोक है और उस धारा का नाम अलख पुरुष है।

१३—अलख पुरुष से भी धारा प्रगट होकर और पहले दस्तूर के मुआफिक नीचे उतर कर जहा ठहरी और उसने मंडल बांध कर रचना करी, उसका नाम सतपुरुष और सतलोक है।

१४—यहाँ तक निर्मल चैतन्य यानी रूहानी रचना हुई और राधास्वामी दयाल आप इन स्थानों में व्यापक और मौजूद हैं। यहा काल क्लेश और दुःख और दर्द और जन्म मरण नहीं हैं। यह सब स्थान दयाल देश या संत देश या निर्मल चैतन्य के देश कहलाते हैं। यहां का प्रकाश सेत[1] रंग है।

१५—बहुत अरसे तक इसी कदर रचना होकर रह गई। और यहाँ की वासी सुरतें हंस कहलाती हैं। और अनन्त[2] दीप रूहानी इन लोकों के गिर्द में पैदा किये गये। उन में हंस रहते हैं और अमी का आहार और पुरुष के दर्शन का विलास करते हैं।

१६—ऊपर जो धारा का जिक्र लिखा गया है, वह धारा निहायत सूक्ष्म है कि किसी तरह नजर नहीं आ सकती और न कुछ उसका आकार मालूम हो सकता है। जैसे चुंबक पत्थर को जब लोहे के छोटे छोटे टुकड़ों के सामने लाओ तो वह लोहे के टुकड़ों को अपनी धार के बर्मीले

१—सफेद। २—अनगिनत।

में खींचता है, पर वह धार उसमें निकलती हुई बिलकुल मालूम नहीं होती है। यह दृष्टान्त भी सर्व अंग करके दुरुस्त नहीं है, लेकिन सिर्फ धारा की सूक्ष्मता समझाने के लिये दिया गया है।

१७—सत्तलोक के मंडल के नीचे जो चैतन्य था, वह श्याम रंग के गुबार में ढका हुआ था और जिस क़दर कि सत्तलोक से दूरी होती गई, वह गुबार भी बढ़ता गया, जैसे किसी चीज़ पर तह पे तह चढ़ी हुई होती है।

१८—सत्तलोक के नीचे से श्याम धारा भूरे रंग की प्रगट हुई और यह धारा भी चैतन्य थी जैसे कि ऊपर के लोकों की धारा चैतन्य है। इस धारा ने सत्तपुरुष से विनती करके आज्ञा माँगी कि सत्तलोक के मुआफ़िक़ रचना करे। तब उसको हुक्म हुआ कि नीचे के देश में जाकर रचना करे। इस धारा का नाम निरंजन यानी काल पुरुष है और नीचे उतर कर यानी ब्रह्मांड में इसी का नाम परब्रह्म और ब्रह्म हुआ।

१९—यह श्याम धारा नीचे उतरी, पर वह मंडल बाँध कर, जैसे ऊपर की धाराओं ने रचना करी, ऐसी रचना न कर सकी। तब उसने सत्तपुरुष से फिर विनती करके मदद माँगी। तब सत्तलोक से दूसरी धारा ज़र्द रंग की प्रगट करके नीचे उतारी गई। यह धारा सुरतों का भंडार लिये हुए आई और फिर इसने और पहली श्याम धारा ने मिल कर नीचे के देश में रचना करी। इस धारा का नाम ज्योति और आद्या है और नीचे के देश यानी ब्रह्मांड में इसी का नाम माया हुआ।

२०—पहले इन दोनों धारों ने ब्रह्मांड की रचना करी यानी ब्रह्म सृष्टि करी। इस देश में गुबार किसी क़दर साफ और सूक्ष्म था, इस सबब से यहाँ की रचना भी सूक्ष्म हुई।

२१—सत्तलोक के नीचे एक स्थान यानी लोक रचा गया कि जिसको दयाल देश का द्वारा समझना चाहिये। और उसके नीचे एक भारी मैदान है, जिसको महासुन्न कहते हैं, और वह दयाल देश और ब्रह्मांड, यानी ब्रह्म और माया देश के बीच में हद के तौर पर है।

२२—फिर इसके नीचे तीन स्थान निरंजन और ज्योति ने रचे, जो ब्रह्मांड की हद में शामिल हैं। नीचे के स्थान को महमदलकँवल कहते हैं और जहाँ निरंजन और ज्योति का स्वरूप प्रगट है और यह स्थान सब मतों का, जो दुनिया में जारी हैं, सिद्धान्त पद है, यानी इसके ऊपर का हाल किसी मत की किताबों में नहीं लिखा है। सिर्फ जोगेश्वर ज्ञानी ब्रह्मांड की चोटी तक यानी महमदलकँवल के ऊपर दो मुकाम तक गये। पर वहाँ का भेद उन्होंने गुप्त रक्खा, कहीं कहीं इशारे में वर्णन किया। लेकिन ब्रह्मांड के परे कोई नहीं गया, सिवाय संत सतगुरु के, जोकि सत्तलोक से आये और कुल रचना के भेद से आप ही वाकिफ थे।

२३—महमदलकँवल से तीन धारें सत, रज, तम, जिनको गुण और ब्रह्मा, विष्णु और महादेव भी कहते हैं, पैदा हुईं और इन धारों ने नीचे के देश की रचना करी, जिसको पिंड कहते हैं और जिसमें छः चक्र शामिल हैं।

२४—इस रचना में देवता और मनुष्य और पशु और बाकी कुल रचना चारों खान की शामिल है। यहां गुबार भारी था यानी स्थूल माया थी। इस सबब से यहाँ की रचना भी स्थूल हुई।

२५—और चार खानों के नाम यह हैं (१) जेरज जो झिल्ली में लिपटे हुए पैदा होवें। (२) अंडज जो अंडे से पैदा होवें। (३) स्वेदज जो पानी और पसीने से पैदा होवें। (४) उष्मज जो जमीन से पैदा होवें, जैसे दरख्त, वनस्पति वगैरह, और भी जो खान से पैदा होवें।

२६—इस दर्जे में सूक्ष्म और स्थूल शरीर के साथ पाँच दूत (१) काम (२) क्रोध (३) लोभ (४) मोह और (५) अहंकार, और चार अंतःकरण (१) मन (२) चित्त (३) बुद्धि और अहंकार, और दस इंद्री यानी पाँच ज्ञान इन्द्री (१) आँख (२) कान (३) नाक (४) जबान, रस लेने वाली और (५) त्वचा यानी खाल और पाँच कर्म इन्द्री (१) हाथ (२) पाँव (३) जबान, बोलने वाली (४) पेशाब की और (५) पाखाने की इन्द्री,

बनीं आँजारों के वास्ते कार्रवाई उन शरीरों के, सूक्ष्म और स्थूल रचना के लोकों में, शामिल हुई।

२७—और इन लोकों में, यानी सूक्ष्म और स्थूल लोक में, माया ने अनेक तरह के भोग इन सब इन्द्रियों के पैदा किये और उन भोगों में मन और इन्द्री अपना भोग विलास कर रहे हैं।

२८—सुरत की धार जो ऊँचे देश से आई, वह पहले मन को चैतन्य करती है और मन के स्थान से जो धार सुरत और मन की मिलौनी से उठती है, वह इन्द्रियों को चैतन्य करती है और इन इन्द्रियों के द्वारे वही धार भोगों और पदार्थों में शामिल होकर उनका रस उन्हीं इन्द्रियों के वसीले से मन को देती है। यह कार्रवाई स्थूल देह में बैठ कर सुरत और मन, इन्द्रियों के वसीले से, इस देश में कर रहे हैं।

वर्णन जौहर सुरत और मन और उनके स्थान का पिंड में

२९—अब समझना चाहिये कि सुरत की धार दयाल देश से आई और वह सतपुरुष राधास्वामी की अंश है। अंश के अर्थ टुकड़े के नहीं हैं। अंश कहने से सिर्फ यह मतलब है कि सुरत वही जौहर है जो कुल मालिक का जौहर है। और वह कुल मालिक सब जगह मौजूद है, पर एक देश में प्रगट और बेपरदे और बाक़ी देश में गुप्त यानी परदे या तह से ढका हुआ है और यह परदे या तह, जिस कदर कि प्रगट देश से दूरी होती गई, बढ़ते गये, जैसे प्याज के ऊपर या केले के दरख़्त पर तह पै तह चढ़ी होती है, और हर एक अंतरी तह या परदा बाहर की तह या परदे से मुलायम और साफ़ और सूक्ष्म होता है। इसी तरह यह तह या परदे ग़ुबार यानी माया के उस चैतन्य पर चढ़े हुए हैं और पहला परदा या तह निहायत लतीफ़ और सूक्ष्म और दूसरा उससे कम लतीफ और तीसरा उससे कम लतीफ है। ऐसे ही स्थूल माया के देश में स्थूल यानी मोटी तह या परदे हैं और सुरत उनके अंदर गुप्त है।

३०—और प्रगट और गुप्त का हाल थोड़ा बहुत इस दृष्टान्त से समझ में आवेगा। जैसे कि इस लोक में पानी एक देश यानी समुद्र में प्रगट है और बाकी देशों में यानी जमीन पर गुप्त है यानी तह या परदों में ढका हुआ है, कहीं वह तह या परदा पांच चार हाथ मोटा, कहीं दस बीस हाथ, कहीं चालीस पचास हाथ और कहीं इससे भी ज़्यादा। मगर पानी हर जगह मौजूद है और बगैर परदे या तह के हटाये उसका दर्शन या उससे कुछ कार्रवाई मुमकिन नहीं है।

३१—दूसरी धार निरंजन से (जिसका स्थान ब्रह्मांड में है और वह नीचे के देश में भी व्यापक है) निकली और इसका नाम मन हुआ। और मन उसको कहते हैं कि जिसमें फुरना होवे यानी तरंग और ख़्याल उठे। यह नीचे के देश में दर्जे बदर्जे स्थूल होता गया और यही इंद्रियों का प्रेरक है।

३२—तीसरी धार माया से निकली। इस माया का स्थान भी ब्रह्मांड में है और वही सब नीचे के देश में मौजूद है और यह भी दर्जे बदर्जे मुआफिक परदों के स्थूल यानी कसीफ होती गई। इसके मसाले से तन और इन्द्री वगैरह बनीं और यह सुरत की शक्ति से चैतन्य है, जिस शक्ति की धार मन के वसीले से पिंड में फैलती है।

३३—सुरत की असली बैठक[1] पिंड में दर्मियान दोनों आंखों के, जो अंदर की तरफ तिल है, उसमें है और इसी स्थान से तमाम पिंड में फैली है और जाग्रत के वक्त दोनों आंखों में नशिस्त है। जब सुरत की धार अंदर और ऊपर की तरफ खिंच जाती है, उस वक्त देह और इन्द्रियाँ बेकार हो जाती हैं यानी तमाम कार्रवाई उनकी बंद हो जाती है।

३४—मन की बैठक स्वासकर सीने के नीचे कौड़ी के मुकाम पर है और वहीं से धार इंद्रियों में आती है और यों तमाम देह में फैलती है। लेकिन जब तक सुरत की धार ऊपर से मन के स्थान पर न आवे, तब तक यह कुछ कार्रवाई नहीं कर सकता है।

१—बैठक।

३५—माया की धार से, जोकि जगह जगह स्थूल रूप हो गई, पिंड के अंग अंग बने हैं और वही कुल देह में व्यापक है।

बयान हालत खिंचाव सुरत का

३६—जब आदमी की पुतली आँख की खिंच जाती है, वह फौरन बेहोश हो जाता है और देह बेकार हो जाती है और मन और इंद्रियाँ भी बेकार हो जाती हैं।

३७—इसी तरह जब ज़्यादा खिंचाव उस धार का हो जाता है, तब आदमी मर जाता है और जो थोड़ा सा खिंचाव हुआ, तब बेहोश हो जाता है या नींद आ जाती है और इस तरफ से ग़ाफिल हो जाता है।

३८—इससे साबित हुआ कि तमाम कार्रवाई बदन की सुरत की धार के आसरे है और इस धार का ऊपर से यानी दिमाग़ से आँखों में और फिर तमाम देह में उतरना और फैलना और फिर अख़ीर वक़्त पर इसी रास्ते से यानी आँख के मुकाम से अंदर और ऊपर की तरफ होकर चले जाना और पिंड का छोड़ना, साफ इन आँखों से नजर आता है, क्योंकि मरते वक़्त पाँव की उँगलियों से खिंचाव उस धार का शुरू होकर रफ़्ता रफ़्ता ऊपर की तरफ को चलता जाता है और जब पुतली उलट गई यानी खिंच गई, तब पिंड की मौत हो जाती है।

३९—और यह बात भी इस बयान से साबित हुई कि जब सुरत जाग्रत के वक़्त आँखों में बैठती है, उस वक़्त देह और दुनिया का दुख सुख और चिंता और फिक्र व्यापती है और जब अंदर की तरफ थोड़ी बहुत खिंच गई, उस वक़्त न देह की खबर रहती है और न दुनिया की और उनका दुख सुख भी नहीं व्यापता है। देखो जब डाक्टर लोग शीशी[1] सुँघाते हैं, उस वक़्त सुरत यानी रूह की धार हट जाती है। फिर बदन काट डालते हैं और कुछ खबर नहीं होती। इससे साफ जाहिर है कि देह और इन्द्रियाँ जड़ हैं और सुरत चैतन्य है। उसकी चैतन्यता

१—'क्लोरोफार्म' से मतलब है।

में यह भी चैतन्य होते हैं। और जब उसमें यानी सुरत में संबंध ढीला हो जाता है या टूट जाता है, उस वक्त यह देह और इन्द्रियाँ बेकार या मुर्दा हो जाती हैं।

४०—ऊपर के बयान से जाहिर होता है कि जो कोई जीते जी दुख सुख, संसार और देह से बचाव चाहे, तो वह ऐसी तरकीब करे कि जिससे जब चाहे तब वह अपनी सुरत को आंख के स्थान से अंदर और ऊपर की तरफ, जिस कदर मुनासिब और जरूर समझे, खींच ले जावे। तब उसको तकलीफ और आराम देह और दुनिया से बचाव हो सकता है।

रचना के तीन दर्जों का बयान

४१—संतों ने कुल रचना को तीन बड़े दर्जों में तकसीम किया है और वह तीन दर्जे यह हैं —

(१) पहला दर्जा जिसमें निर्मल चैतन्य यानी सिर्फ रूह का मंडल है और यहां के लोक और उन लोकों में सब रचना रूहानी यानी चैतन्य लतीफ[1] है और यह मंडल दयाल अथवा संत देश कहलाता है।

(२) दूसरा दर्जा — इस पहले दर्जे के नीचे से, जैसा कि ऊपर बयान हो चुका है, गुबार यानी माया का जहूर हुआ। जितने रंग हैं, लाल से लगा कर नीले यानी काले रंग तक, सब मन और माया के रंग हैं। इस दर्जे में सूक्ष्म यानी लतीफ माया निर्मल चैतन्य को तह या गिलाफ के तौर पर ढके हुए है, यानी लतीफ माया की देहियां तैयार होकर और उनमें रूह बट कर उस देश में कार्रवाई करती है। यह दर्जा ब्रह्मांड कहलाता है।

(३) तीसरा दर्जा—इस दर्जे में निर्मल चैतन्य पर, सिवाय सूक्ष्म माया के गिलाफों के, स्थूल माया की तहें चढ़ी हुई हैं और इसी सबब से यहाँ के लोक भी कसीफ और उनकी रचना भी निहायत कसीफ यानी स्थूल है। छः चक्र पिंड के इसी दर्जे में शामिल हैं।

१—सूक्ष्म।

इस लोक में सुरत की हालत और कार्रवाई का बयान और उसकी निकामी का जतन

४२–हमारा यह पृथ्वी लोक तीसरे दर्जे में है और इसी सबब से यहाँ की रचना भी स्थूल है, और यहाँ सुरत यानी रूह कितने ही परदों में गुप्त है। किसी दरख़्त का बीज लेकर देखो कि कितनी तह या छिलके उस पर चढ़े हुए हैं और फिर उनके अंदर मग़ज और मग़ज के भी किसी दर्जे में उस बीज की रूह की बैठक है, जहां से कि वक़्त पैदायश कुल्ला फूटता है यानी प्रथम धार निकलती है। और इन परदों या गिलाफों या तहों को शरीर या देह कहते हैं।

४३–इसी तरह आदमी की रूह भी कई परदों यानी शरीरों में गुप्त है, पहला स्थूल शरीर, दूसरा सूक्ष्म और तीसरा कारण शरीर। और इन तीनों में हर रोज सुरत यानी रूह की आमदरफ़्त[1] रहती है।

४४–ऊपर के बयान से ज़ाहिर है कि यह देश सुरत यानी रूह का नहीं है, क्योंकि यह माया का देश है और यहाँ काल और माया प्रधान यानी गालिब हैं और सुरत उनके आधीन है। हरचन्द कि सब कार्रवाई इस देश में सुरत की धार की ताकत से हो रही है, पर सुरत का मुख यहां नीचे और बाहर की तरफ़ हो रहा है और इस सबब से उसकी धारें मन और माया से मिलकर जारी होती हैं और मन और माया का असर उनमें ज़बर[2] रहता है। इस वास्ते जीव का झुकाव संसार और उसके भोगों की तरफ ज़्यादा रहता है।

४५–अब जब तक कि किसी मनुष्य को ऊपर के देश के वासी या उस तरफ के चलने वालों का संग न मिलेगा और वह उनसे भेद रास्ता और जुगत चलने की लेकर इस देश और इस घाट यानी स्थान को आहिस्ता आहिस्ता छोड़ना शुरू न करेगा, तब तक सच्चे और पूरे तौर से मन और माया का जोर कम न होगा और न उस मनुष्य की

१—आना जाना। २—ज़्यादा।

पुरानी आदतें और स्वभाव और ख्वाहिशें और व्यौहार जो संसारियों का संग करके पड़ गई हैं, बदलेंगी।

४६—संग और तमाशा और तजरुबा, जिस सोहबत और जिस पेशे में जो कोई कि होवे, बड़ा भारी असर रखता है, यानी जैसे आदमी की सोहबत होगी और जैसा कुल कि वह अपनी आंखों से देखेगा और जो कुल कि हालत उस पर बीतेगी, उसी मुआफिक उसकी रहनी और व्यौहार और चाह होवेगी और जो चाह कि उसके मन में जबर होगी, उसी के पूरा करने के वास्ते वह मेहनत और तवज्जह के साथ जतन करेगा।

अमर और परम सुख की प्राप्ति के लिये जतन करना जरूर है और उसी का नाम सच्चा परमार्थ है

४७—सब जीव दुनिया के सुखों के वास्ते मेहनत कर रहे हैं और दुखों के दूर करने के लिये तदबीर करते हैं। पर इस दुनिया के जितने सुख हैं, वे सब मन और इन्द्रियों के भोग हैं और नाशमान और तुच्छ और जड़ हैं। और जिस किसी को यह सब सुख मिल भी गये, तो एक दिन उनको जरूर मरने के वक्त छोड़ना पड़ेगा और जो उन्हीं की चाह मन में जबर रही और उम्र भर यही काम करता रहा, तो उसी चाह और स्वभाव और आदत के मुआफिक फिर जन्म धरना पड़ेगा। और इसी तरह हमेशा जन्म मरण का चक्कर जारी रहेगा और दुख सुख भोगता रहेगा और चाहे जैसा जतन करे, देही के दुख सुख से कभी निवृत्ति नहीं होवेगी।

४८—अब समझना चाहिये कि जिस कदर सुख और ज्ञान और आनंद और रस हैं, सब सुरत की धार के वसीले से मालूम होते हैं। जो वह धार शामिल न होवे या हट जावे, तो यह सब सुख और आनंद और ज्ञान जाते रहें। और जबकि सुरत की एक एक धार में इस कदर

१—छुटकारा।

रस और आनंद है कि मनुष्य उस में फँस रहे हैं, तब सुरत के भंडार में, यानी उस रूहानी और निर्मल चैतन्य देश में, जहाँ से सब सुरतें आई हैं, किस क़दर रस और आनंद और सुख और ज्ञान होवेगा।

४९—इस वास्ते हर एक मनुष्य को, चाहे पुरुष होवे या स्त्री, मुनासिब है कि उस परम आनंद की प्राप्ति के लिये थोड़ा बहुत जतन जरूर करे और जिस क़दर वह जतन करता जावेगा, इस नीचे के देश से ऊँचे देश में चढ़ कर विशेष सुख भोगता जावेगा और रफ़्ता रफ़्ता एक दिन परम और अमर आनंद के भंडार में पहुँच जावेगा और वहाँ पहुँच कर आप भी अमर हो जावेगा। और वह देश भी, जो निर्मल चैतन्य का भंडार है, अमर है और वहाँ का सुख भी अमर है।

५०—जो कोई इस बात को नहीं मानेगा, वह इसी नीचे देश में पड़ा रहेगा, और बारम्बार ऊँची नीची जोनों में और ऊँचे नीचे देशों में देह धर कर दुख सुख भोगता रहेगा, और अपनी करनी और कर्म के मुआफिक़ उन जोनों में फल पावेगा।

५१—सिवाय इसके मनुष्य में तीन किस्म की ताक़तें मौजूद हैं। पहली देह और इंद्रियों की, दूसरी मन और बुद्धि की और तीसरी सुरत रूह की। जो कोई इन तीनों ताक़तों को मथन करके जगावे, वह सब में श्रेष्ठ कहलावे और ऊँचे दर्जे में पहुँच सकता है और मालिक के भेद को जान सकता है। और जो एक एक ताक़त को सिर्फ जगावेगा, वह उसी मुआफिक़ फायदा उठावेगा। लेकिन जो सुरत की ताक़त को मथन यानी अभ्यास करके जगावेगा, उसकी बराबरी कोई नहीं कर सकेगा। वह खुद मालिक का प्यारा हो जावेगा और सब रचना उसकी फरमाबरदारी[1] करेगी।

५२—अब समझो कि जिसने देह और इन्द्रियों की क़ुव्वतें[2] भी नहीं जगाईं, वह सिर्फ कुली या हल जोतने का काम करके, मुश्किल से अपना और अपने कुटुम्ब का पेट भरेगा और हैवानों[3] के मुआफिक़ नादान

१—आज्ञापालन। २—ताक़तें। ३—जानवरों।

रहेगा। और जिसने कि यह कुव्वतें जगाईं, जैसे सीने, लिखने, तसवीर खींचने, गाने बजाने वगैरह का काम सीखा, वह किस कदर फायदा अपनी मेहनत का उठा सकता है।

५३—और जिसने अक्ली[1] और इल्मी[2] कुव्वत को मदरसे में अभ्यास और मश्क करके जगाया, वह देखो किस कदर बड़ा दर्जा हाकिमी व डाक्टरी व जर्जी व मुंसिफी व आनरेरी[3] वगैरह का पाता है और अपनी मेहनत व कारवाई से किस कदर ज्यादा फायदा उठाता है और किस कदर मान बड़ाई उसकी होती है और हजारों लाखों आदमियों पर हुक्म चलाता है।

५४—और जिन्होंने अपनी सुरत यानी रूह की ताकत को अभ्यास करके जगाया, जैसे कबीर साहब और गुरु नानक साहब जो संत हुए, और कृष्ण महाराज और रामचंद्र और बुद्ध जी औतार, और व्यास और वसिष्ठ जी वगैरह महात्मा, और हजरत ईसा और हजरत मुहम्मद और और पैगम्बर और औलिया वगैरह, उनकी किस कदर महिमा और शोहरत[4] हुई कि औरत मर्द और बच्चे, अनेक देशों में उनके नाम की तारीफ[5] करते हैं और उनकी बानी और वचन को अपनी मुक्ति का वसीला[6] समझते हैं और कैसे भाव और प्यार के साथ उनकी पूजा और यादगारी करते हैं। बावजूद कि उनको सैकड़ों और हजारों वर्ष गुजर गये, मगर उनका नाम और बानी बदस्तूर लोगों के दिलों में ताजा असर करती है।

५५—अब समझना चाहिये कि हर एक औरत और मर्द पर फर्ज है कि थोड़ा बहुत तीनों कुव्वतों को अभ्यास करके जगावे।

५६—और जो ऐसा नहीं करेंगे, तो वह कुव्वतें उनमें जैसी सोती आई, वैसी ही सोती रहेंगी और वे, उनके जगाने से जो फायदा हासिल होना मुमकिन है, उससे महरूम[7] और अभागी रहेंगे।

५७—इन सब में से रूह यानी सुरत की कुव्वत को तो जरूर थोड़ा

१—अक्ल की। २—विद्या की। ३—आनरेरी मेजिस्ट्रेट का। ४—नामवरी ५—आदर। ६—जरिया। ७—महरूम रहेंगे—प्राप्त न करेंगे। ८—बदकिस्मत।

बहुत जगाना हर एक मनुष्य को लाज़िम और फर्ज है कि उसमें उसके जीव, रूह, का कल्यान और मालिक के देश में पहुँच कर परम आनन्द को प्राप्त होना मुमकिन है, और नहीं तो हमेशा अँधेरे यानी माया के घेर में पड़ा रहेगा और देहियों के साथ दुख सुख और जन्म मरण की तकलीफ भोगता रहेगा।

५८—सिवाय इसके दफा ३६, ३७, ३८, ३९, ४० के पढ़ने से मालूम होगा कि सुरत, रूह, मरने के वक्त आँख के गस्ते होकर जाती है, यानी जब पुतली उलट जाती है, उस वक्त मौत हो जाती है। अब हर एक मनुष्य को, चाहे स्त्री होवे या पुरुष, जरूर और मुनासिब है कि अपने मरने के वक्त से पहले इस गस्ते को, जिस कदर बन सके, खोले, यानी ले करे, और वहा की रचना और कुदरत और कैफियत अपनी आँख से देख ले। और जो ऊपर की तरफ चलने में आनन्द और सरूर जरूर ज्यादा से ज्यादा मिलता जावेगा, उसका भोग मन और रूह के साथ थोड़ा बहुत इस जिंदगी में करे। तब अखीर वक्त पर, और भी किसी भारी तकलीफ या दुख या चिंता के समय, उसको रंज बहुत कम होगा और ऐसे वक्त पर अपने अन्दर की तरफ तवज्जह करने से फौरन किसी कदर फायदा मालूम होवेगा।

५९—ऐसे अभ्यासी को कुल मालिक राधास्वामी दयाल की दया और उनके अंग संग और हाजिर[1] नाजिर[2] होने का सबूत अपने अंतर में मिलकर, दिन दिन प्रेम और प्रतीति चरनों में बढ़ती जावेगी और दुनिया के काम भी उसके सहज में कुल मालिक की मौज के मुआफिक सरंजाम पावेंगे[3] और उसके मन में सहज उदासीनता[4] संसार और उसके पदार्थों की तरफ से होती जावेगी और भक्ति बढ़ती जावेगी कि जिससे वह अपना सच्चा उद्धार होता हुआ जीते जी आप देखता जावेगा।

६०—सच्चा परमार्थ इसी का नाम है कि अपने घट में जिस गस्ते होकर सुरत, रूह, राधास्वामी धाम से उतर कर पिंड में आकर ठहरी है,

१—सर्वव्यापक। २—सर्वज्ञ। ३—सरंजाम पावेंगे—पूरे होंगे। ४—उपरामता।

उसी रास्ते से उसको चला कर उसके निज देश में पहुँचाना और अपने सच्चे माता पिता राधास्वामी दयाल के चरनों में पहुँच कर उनके दर्शन के विलास का आनंद लेना।

६१—संत मत में कुल मालिक की महिमा और पूजा है और वह पूजा जाहिरी नहीं है। उसका भेद लेकर उससे मिलने का जतन करना यही पूजा है और उसके चरनों में दिन दिन प्रीति और प्रतीति का बढ़ाना यही उसकी भक्ति है।

और जोकि सच्चा और कुल मालिक सब जगह मौजूद है और मनुष्य इस लोक में सबसे श्रेष्ठ यानी उत्तम है, फिर मनुष्य के चोले में उसका प्रकाश बनिस्बत और रचना इस लोक के ज़्यादा प्रगट है। इस वास्ते जो कोई उससे मिलना चाहे या उसका प्रकाश और जल्वा देखना चाहे, उसको मुनासिब है कि अपने घट में उसका पता और भेद लेकर खोज करे, क्योंकि मनुष्य का चोला कुल रचना का नमूना है और इस चोले में जो कुछ कि बाहर रचना है, वह सब छोटे स्केल[1] पर मौजूद है, जैसे कि एक तसवीर बड़ी और एक उसी की नकल छोटी, दोनों में बराबर सब आकार[2], बड़े और छोटे के हिसाब से, मौजूद है।

६२—बाहरमुख पूजा जिस कदर कि है वह नकल की है या मनुष्य से कमतर[3] दर्जे की रचना की है। यह दोनों असल से बहुत दूर हैं और जो इनका सिलसिला असल से नहीं लगा हुआ है, यानी असल जो घट में है उसका भेद नहीं मालूम है, और न उसके मिलने की तरकीब[4] की खबर है, तो वह सब पूजा वृथा और फजूल है, क्योंकि उस काम के करने से कभी असल नहीं मिलेगा, जब तक कि भेदी से उसका भेद लेकर वह जुगत, कि जिससे मेला होवे, अपने अंतर में कमाई न जावे।

६३—और वह भेद और जुगत यानी तरीका अभ्यास का इस वक्त में सिर्फ राधास्वामी मत में मिल सकता है, और किसी मत में उस भेद और तरीके का जिक्र भी नहीं है। और वह जुगत ऐसी है कि लड़का,

१—शरीर। २—पैमाने। ३—रूप। ४—घटिया।

जवान, बूढ़ा, चाहे स्त्री होवे या पुरुष, उसको आसानी के साथ बगैर किसी खतरे या विघ्न के कमा सकता है।

६४—और मतों में प्राणायाम को सबसे बढ़कर तरीका या योग क़रार दिया[1] है, पर वह ऐसा मुश्किल और खतरनाक है कि विरक्तों से भी उसका अभ्यास नहीं बन सकता। फिर बिचारे गृहस्थी और खास कर औरतें तो उसके संजमों की निगहदाश्त[2] और प्राणों के रोकने और चढ़ाने का अभ्यास बिलकुल नहीं कर सकतीं, और इस सबब से उनका उद्धार उन मतों के मुआफिक़ मुतलक़[3] नहीं हो सकता।

६५—इन मतों के आचार्यों ने प्राण की धार पर सवार होकर रास्ता तै करना बतलाया, यानी प्राण योग का उपदेश किया, पर संतों ने रूह, सुरत, की धार की सवारी तजवीज की। अब ख़याल करो कि रूह की धार बड़ी है या प्राण की धार। सोते में प्राणों की धार जारी रहती है मगर कुल कारवाई मन और इन्द्रियों की बंद रहती है और जाग्रत में जब कि रूह की धार आंखों के मुक़ाम पर आकर ठहरी, उस वक्त कुल कारवाई तन मन और इन्द्रियों की जारी हो जाती है। इससे साफ जाहिर है कि जो कोई रूह की धार पर सवार होकर घर की तरफ चलेगा, वह सुखाला पहुँचेगा और जल्द मन और इंद्री और तन उसके क़ाबू में आवेंगे और किसी तरह का खतरा और विघ्न रास्ते में पैदा नहीं होगा। और जो प्राण की धार के आसरे चलेगा, उसको प्राणों का रोकना और चढ़ाना, बगैर पाबन्दी (बतावे) मुकर्रर किये हुए संजमों के, जो कि निहायत कठिन और मुश्किल हैं और न गृहस्थ से बन सकते हैं और न विरक्त से, क़तई नामुमकिन होगा। इस वास्ते यह रास्ता बिलकुल बंद हो गया और सिर्फ जबानी या तहरीरी[4] बातचीत इस अभ्यास की रह गई। और जो बिलफर्ज[5] किसी एक विरक्त से थोड़ा बहुत अभ्यास बना भी, तो बाकी विरक्त और कुल गृहस्थियों से तो उसका बन आना नामुमकिन है। फिर ऐसे रास्ते के बयान करने से क्या

१—क़रार दिया—बताया। २—खबरगीरी। ३—क़तई। ४—लिखकर। ५—मान लिया जाय कि।

फायदा ? किताबों में उसका जिक्र लिखने और जबानी बयान करने से अभ्यास का फल नहीं मिल सकता है।

६६—इस वास्ते जो अभ्यास कि संतों ने बताया है, उसका मानना और उसके मुआफिक थोड़ी बहुत कार्रवाई करना हर एक को, चाहे औरत होवे या मर्द, मुनासिब और जरूर है, क्योंकि बगैर उसके दुनिया और देह के सुख दुख और जन्म मरण के सख्त दुःखों से बचाव किसी तरह मुमकिन नहीं और न सच्चा और पूरा उद्धार या मुक्ति हासिल हो सकती है।

वर्णन कैफ़ियत सुरत शब्द अभ्यास की

६७—इस अभ्यास का नाम सुरत शब्द योग है, यानी सुरत, रूह, को शब्द के साथ मिलाकर चढ़ाना। और शब्द नाम सिर्फ आवाज का नहीं है, बल्कि चैतन्य की धार से मतलब है, क्योंकि जहां धार रवां है, वहाँ उसके साथ आवाज भी बराबर होती है। धार नजर नहीं आती, पर आवाज से उसकी पहचान होती है, जैसे आदमी का असली रूप यानी उसकी सुरत, रूह, की कैफियत नजर नहीं आती, पर आदमी के बोलने से मालूम होता है कि रूह, सुरत, उसमें मौजूद है और कार्रवाई कर रही है। कुल रचना में शब्द के वसीले से कार्रवाई हो रही है और यह शब्द निशान और जहूरा चैतन्य का है। जहां शब्द नहीं, वहाँ चैतन्य भी नहीं यानी गुप्त है।

६८—सुरत चैतन्य को शब्द चैतन्य से मिलाने का मतलब यह है कि सुरत जो उस शब्द की धार है, उसको अपने घर की तरफ आवाज की डोरी को पकड़ के उलटाना। और आवाज के बराबर कोई अँधेरे में उजाला करने वाला और रास्ता दिखलाने वाला नहीं है। जब कि कोई आदमी अँधेरी रात में जंगल में रास्ता भूल जावे और उस वक्त बसबब छाये होने बादल के, किसी किस्म की रोशनी चांद, तारागण, बिजली

१—जारी।

और मशाल वग़ैरह की नहीं है, तो जो आवाज आदमियों की किसी नज़दीक के गाँव से आती होवे, उसको पकड़ के भूला हुआ आदमी गाँव में पहुँच सकता है।

६९.–इसी तरह यह आवाज अनहद शब्द की, जो घट घट में पूर[1] है और बग़ैर मदद ज़बान या किसी बाजे के हर वक्त जारी है, ऊँचे देश यानी कुल मालिक के दरबार से आ रही है और एक एक रास्ते के स्थान पर ठहर कर और फिर उस धार के वसीले से, जो वहाँ से निकली है, बरामद हो कर (निकल कर) कुछ तब्दीली के साथ बराबर ऊपर से नीचे के मुकाम तक जारी है और कुल देह और रचना भर में फैली हुई है। जो कोई इस आवाज का भेद और पता यानी स्थान स्थान के शब्द का हाल भेदी से दरियाफ़्त करके अपने मन और चित्त से उसको सुनता हुआ आँखों के रास्ते से चलना शुरू करे, वह दिन दिन उस स्थान के, जहाँ से कि पहली आवाज आ रही है, नजदीक पहुँचता जावेगा और फिर वहाँ से दूसरे शब्द को पकड़ के चलेगा। इसी तरह सब मंजिलें रास्ते की तै करता हुआ एक दिन कुल मालिक राधास्वामी दयाल के देश में जा पहुँचेगा।

७०–मालिक कुल अरूप और विदेह है। उसका ध्यान किसी तरह कोई नहीं कर सकता है। पर शब्द के वसीले से, जो उस मालिक के चरनों से जारी हुआ है, अभ्यासी ध्यान करता हुआ पहुँच सकता है, क्योंकि शब्द उस मालिक का प्रथम जहूरा और निशान है। और जैसे कि वह मालिक अरूप है, शब्द भी अरूप है, पर ध्यान में बहुत भारी मदद देता है, यानी ध्याता[2] को उसके इष्ट के पास पहुँचाता है। इसी अरूप का ध्यान करके अभ्यासी उस अरूप पद में पहुँच सकता है। और कोई रास्ता या तरकीब पहुँचने की ऐसी आसान और बेहतर और निश्चय करके सीधी राह से पहुँचाने वाली कतई नहीं है, क्योंकि रूह की धार जो शब्द की धार है, उससे बढ़कर और कोई धार नहीं रची गई है। वह और सब धारों की कर्त्ता और चैतन्य करने वाली

१–हो रही। २–ध्यान करने वाले।

है। खुद प्राण की धार भी रूह यानी जान की धार से चैतन्य है। फिर सुरत शब्द से बढ़कर और कोई जुगत न रची गई और न हो सकती है।

७१—यह बात सबको मालूम होवेगी कि सुरत, रूह, का आवाज के साथ प्यार और इश्क[1] जाती यानी असली है। जैसे कोई आदमी कैसे ही जरूरी काम के वास्ते जाता होवे और जो कहीं रास्ते में उम्दा गाना बजाना होता होवे, तो जरूर थोड़ी देर के वास्ते वहां ठहर कर उसको शौक से सुनेगा, बल्कि सिर्फ आदमी ही नहीं, जानवर भी उम्दा बाजे और रसीली आवाज के आशिक हैं और उसको बड़ी तवज्जह के साथ एकाग्र चित्त होकर सुनते हैं और खुश होते नजर आते हैं। सबब इसका यही है कि सुरत का भंडार शब्द है और यह आप भी आवाज स्वरूप है और इस वास्ते आवाज के साथ इसकी प्रीति या इश्क जाती और असली है। रसीली आवाज सुनकर सुरत और मन मस्त[2] हो जाते हैं और गाने या बाजा बजाने वाले के संग संग फिरते हैं और कभी खुशी में भर कर नाचने लगते हैं और ज्यादती सरूर में बेहोश हो जाते हैं।

७२—जिस किसी को सच्चा शौक होवे, इस अभ्यास का चंद रोज यानी एक महीने पन्द्रह रोज इम्तहान और परीक्षा करके आप देख ले, क्योंकि यह राधास्वामी मत करनी का है, बातों और विद्या बुद्धि की चतुराई का नहीं है। विद्यावान अपनी बुद्धि के अहंकार में संतों के वचन को गौर और फिक्र के साथ, बिना पक्षपात के, न सुन कर कोरे रह गये और उनको सच्चे मालिक का या उसके मिलने के रास्ते और तरीके का पता न लगा। सिर्फ बातों में संतोष करके थक रहे और अहंकार किया कि उनके बराबर कोई कुछ नहीं जानता है और हकीकत में असल भेद कुल मालिक और जीव यानी सुरत और शब्द की धार से बिलकुल बेखबर हैं।

१—प्रेम। २—मस्ती।

७३–जो सच्चे खोजी और दर्दी लोग हैं और किसी मत या तरीक़े में उनका बंधन और पक्ष नहीं है और न अपनी विद्या और बुद्धि का ऐसा अहंकार रखते हैं कि हमने सब कुछ जान लिया और समझ लिया है, वे राधास्वामी मत के अभ्यास के लायक हैं और वही राधास्वामी मत के हाल और भेद और अभ्यास की जुगत को सुनकर मगन होवेंगे और उसको दिलोजान से मानेंगे और उसके मुआफिक करनी करके उसके फल को प्राप्त होंगे, यानी अपनी जिंदगी में अपने सच्चे उद्धार और सच्ची मुक्ति का सबूत हासिल करेंगे और एक दिन सच्चे मालिक के देश में पहुँच कर उसके दर्शन का आनन्द लेवेंगे और जनम मरन और देह के दुख सुख से बच जावेंगे।

राधास्वामी मत के अभ्यासी को प्रेम और सच्चे शौक़ की ज़रूरत और उसकी महिमा

७४–जितने काम दुनिया के हैं, बगैर शौक या मुहब्बत के वह दुरुस्ती से नहीं बन सकते हैं, यानी जब तक कि उनमें मन और इन्द्री पूरी तवज्जह के साथ शामिल नहीं होते हैं, वह काम दुरुस्त नहीं होते। फिर परमार्थ का खोज और अभ्यास बगैर पूरी तवज्जह के किस तरह दुरुस्त बन सकता है? इस वास्ते सच्चे परमार्थी को राधास्वामी मत में ज़रूर है कि प्रेम अंग लेकर सतसंग और अभ्यास करे, तो उसमें फायदा मालूम पड़ेगा, और नहीं तो उसकी कार्रवाई रूखेपन के साथ होवेगी और उसमें रस कुछ नहीं आवेगा और न प्रीति और प्रतीति बढ़ेगी।

७५–जो प्रेम कि प्रतीति के साथ है, उसके ठहराव का भरोसा ज़्यादा होता है और उसमें फायदा भी ज़्यादा मिलेगा और कुल मालिक राधास्वामी दयाल की दया भी ज़्यादा आवेगी। और यह प्रतीति सतसंग करके हासिल होगी।

७६–सतसंग नाम गुरू या साध के संग का है और वह गुरू और

साध संत मत अथवा राधास्वामी मत के पैरो[1] होने चाहिये। ऐसे सतसंग में सिवाय इन बातों के और किसी लड़ाई झगड़े किस्से बखेड़े का जिक्र न होगा:—

(१) महिमा सतपुरुष राधास्वामी दयाल की और भेद रास्ते और मंजिलों का और जुगत रास्ता तै करने की,

(२) तरीका बढ़ाने प्रेम प्रीति का राधास्वामी दयाल और गुरू के चरनों में,

(३) पैदा करना हालत उदासीनता का दुनिया और उसके भोगों की तरफ से अपने मन में,

(४) वर्णन उन विघ्नों का जो मन और माया अभ्यासी के रोकने को पैदा करते हैं,

(५) हाल उस कैफियत का जो अभ्यासी को हालत सतसंग और अभ्यास में मालूम होती है, और

(६) जिक्र चढ़ाई सुरत का मुकामों पर और उसकी हालत वगैरह।

७७—सतसंग में बैठ कर और चित्त देकर बचन सुनने से बहुत से संशय और भरम दूर होते हैं और बहुत सी चीजों में या बातों में जो भाव[2] और पकड़ जीव की अब से चली आती है, वह भी ढीली हो जाती है। इस तरह आहिस्ता २ जीव काबिल अभ्यास करने सुरत शब्द योग के हो जाता है। और जिन्होंने कि सतसंग नहीं किया और सिर्फ अभ्यास की बड़ाई सुन कर और मत में शामिल होकर, यानी उपदेश लेकर, उसकी कमाई करने लगे, तो उनसे अभ्यास जैसा चाहिये, वैसा बन नहीं पड़ेगा और न रस आवेगा, क्योंकि जब तक संशय और भरम दूर न होवें और अंतर में सफाई न होवे, तब तक मन और सुरत सर्व अंग करके[3] दुरुस्ती के साथ अभ्यास में नहीं लगते।

७८—इसी तरह जब कोई सतसंग में बैठ कर पहचान कुल मालिक

१—मानने वाले। २—श्रद्धा। ३—सर्व अंग करके—पूरी तरह।

राधास्वामी दयाल और उनके धाम की और भेद रास्ते का और बड़ाई सुरत शब्द मार्ग की सुनेगा और बुद्धि से अच्छी तरह समझेगा, तब उसके मन में संतों के बचन की थोड़ी बहुत प्रतीति आवेगी और जब उस प्रतीति के मुआफिक थोड़ा बहुत अभ्यास करके रस और राधास्वामी दयाल की दया का परचा[1] अपने अंतर में पावेगा, तब सच्ची प्रीति घट में पैदा होगी और प्रतीति बढ़ती जावेगी और फिर अभ्यास का भी शौक बढ़ता जावेगा।

७९—बगैर थोड़े बहुत ऐसे शौक और प्रीति और प्रतीति के रास्ता घट में तै करना और कुदरत की कैफियत को देखना मुश्किल है, क्योंकि जब तक कुछ भी शौक और प्रीति और प्रतीति दिल में नहीं आवेगी, तब तक सुरत और मन और इन्द्रियाँ सिमट कर अभ्यास में नहीं लगेंगी और न उसमें रस आवेगा। और इस सबब से अभ्यासी थोड़े दिन कुछ कार्रवाई करके उसको, थक कर और निरास होकर, छोड़ देगा और संतों के बचन को रोचक समझ कर उनका निरादर करेगा।

८०—प्रेम या प्रीति खैंच शक्ति को यानी कुव्वते जाजबा को कहते हैं। इसी शक्ति से तमाम रचना, जो कि छोटे २ जर्रों या परमाणुओं से मिल कर रची गई है, कायम है और कुल देहियों या सुरतों का ठहराव और कार्रवाई इसी शक्ति के आसरे हो रही है। जो प्रेम न होवे तो कोई किसी से मेल न करे और न किसी काम में मन लगा कर उसकी कार्रवाई करे।

८१—जब कि कुल रचना की कार्रवाई प्रेम के आसरे जारी है, बल्कि सब रचना प्रेम के वसीले से ठहरी हुई है, तो परमार्थ की कमाई जिससे सुरत अंश अपने अंशी यानी भंडार से मिलना चाहती है, किस तरह बगैर प्रेम के जारी हो सकती है और क्योंकर बिना सच्चे शौक के इन दोनों का आपस में मेल हो सकता है?

८२—कुल मालिक राधास्वामी दयाल प्रेम के भंडार हैं और सुरत

१—तजरुबा।

जो उनकी अंश या धार है, वह भी प्रेम स्वरूप है। इस वास्ते जब तक सुरत में प्रेम न प्रगट होगा, तब तक उसका मेल अपने भंडार से नहीं होगा, यानी रास्ता तै करके उस भंडार में पहुँचने की कार्रवाई (जिसको सुरत शब्द का अभ्यास कहते हैं) दुरुस्ती से नहीं बन पड़ेगी।

८३—ऊपर के बयान से ज़ाहिर है कि जब तक पहले सतसंग करके प्रीति और प्रतीति मन में नहीं आवेगी और संशय और भरम दूर न होवेंगे, तब तक प्रेम पैदा न होगा। इस वास्ते हर एक सच्चे खोजी और दर्दी परमार्थी को मुनासिब और जरूर है कि पहले राधास्वामी मत के सतसंग में शामिल होकर होशियारी से वचनों को सुन कर और समझ कर और अपने संशय और भरम दूर करके अभ्यास शुरू करे। तब उसको उसका फायदा जल्द मालूम होवेगा और आयंदा को दिन दिन, मुआफिक उसकी लगन के, तरक्की होती जावेगी।

राधास्वामी मत में पाप पुण्य यानी शुभ और अशुभ कर्म की शरह[1]

८४—राधास्वामी मत में शुभ और अशुभ कर्म यानी पुण्य और पाप की शरह ऐसे तौर पर की गई है जिसमें किसी को किसी तरह के शक और पकड़ के वास्ते मौका नहीं रहता है। और जो अनेक फिरकों और अनेक मतवालों ने बहुत से काम पुण्य और बहुत से पाप के साथ नामजद[2] किये हैं, इनमें बहुत भेद रहता है, यानी वाजे काम ऐसे हैं कि एक मत या एक देश में वे पाप समझे जाते हैं और दूसरे देश और मत में पुण्य माने जाते हैं या एक ही मत में एक वक्त वे पाप कर्म और दूसरे वक्त में जायज[3] शुमार किये जाते हैं। जैसे जानदार का मारना आमतौर पर अजाब[4] में दाखिल है और मांस अहारियों में वही काम जारी है, या आदमी का मारना गुनाह[5] है और लड़ाई में वही काम जायज समझा गया, या अपने पड़ोसी का माल और जमीन छीन लेना

१—तफसील। २—बताये हैं। ३—मुनासिब। ४—बुराई। ५—पाप।

या उसमें ज़बरदस्ती करना नामुनासिब समझा गया और राजा और बादशाह लोग अपने क़रीब के कमज़ोर राजाओं का राज ज़रा ज़रा सी बात पर नाराज़ होकर छीन लेते हैं और यह काम मुल्कगीरी[1] में दाख़िल किया गया, या यह कि दूसरे के माल या औरत को हाथ लगाना पाप समझा गया लेकिन बाद फतह के राजा लोग शहरों के लूटने का हुक्म दे देते हैं और उस वक्त उनकी फौज बहुत से बेगुनाह[2] मर्द और औरतों को क़त्ल कर डालती है और उनका माल लूट लेती है और औरतों की इज़्ज़त बिगाड़ती है, या यह कि अपने मतलब के वास्ते झूठ बोलना नाकिस[3] समझा गया और राजाओं की आपस की कार्रवाई में उनके वकील तरह तरह की बातें बना कर और तहरीरात[4] को उलट फेर कर उनके मानी और मतलब अपने मुफीद[5] लगा कर जो कार्रवाई करते हैं, वह दानाई[6] और उम्दा कारगुजारी में दाख़िल होती है, या दीवानी और फौजदारी के मुआमलात में जो कोई वकील या मुख़्तार, क़ानून और अपनी तक़रीर के जोर से, सफेद को सियाह या सियाह को सफेद दिखला देवे, वह बहुत होशियार और चालाक कारकुन समझा जाता है।

८५—राधास्वामी मत में जो काम कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों में सुरत को पहुँचावे, शुभ और पुण्य कर्म में दाख़िल है और जिस काम के करने से दूरी होती जावे, वही अशुभ और पाप कर्म है। यह शुभ और अशुभ कर्म मनुष्य की जात से ताल्लुक रखते हैं।

८६—कुल मालिक राधास्वामी दयाल सब की जड़ यानी आदि भंडार हैं। उन्हीं के चरनों से धार प्रगट होकर नीचे तक रचना करती चली आई। जिस धार यानी सुरत का रुख मन और इंद्रियों के वसीले से बाहर और नीचे की तरफ है और उसी तरफ उसकी कार्रवाई जारी है, वह दिन दिन किसी क़दर दूर होती जावेगी और जिस सुरत ने

१—देशों पर विजय प्राप्त करना। २—बेक़सूर। ३—बुरा। ४—लेखों। ५—फ़ायदे के लिये। ६—होशियारी।

कि संतमत का भेद और जुगत लेकर अपना रुख चरनों की तरफ मोड़ना शुरू किया और राधास्वामी दयाल के सन्मुख पहुँचने और उनके दर्शन का बिलाम हासिल करने का इरादा सच्चा और पक्का करके अभ्यास शुरू किया, वही सुरत दिन दिन नजदीक होकर एक दिन चरनों में पहुँच जावेगी। ऐसी समझ लेकर सुरत शब्द का अभ्यास करना, यह शुभ और पुण्य कर्म है।

८७—अमली शुभ और अशुभ कर्म यही हैं कि जिनका जिक्र ऊपर लिखा गया। अब वह शरह इन कर्मों की की जाती है जो इस लोक के व्योहार के ताल्लुक है और वह यह है कि जो काम कि यह जीव अपनी निस्बत पसंद न करे, उसको औरों की निस्बत भी पसंद करना नहीं चाहिये, यानी जैसा कि यह चाहता है कि लोग इस से बर्ताव करें, वैसा ही इसको चाहिये कि औरों के साथ आप बर्ताव करे। इस में किसी को इसके हाथ से रंज और तकलीफ नहीं पहुँचेगी। इस वास्ते इसी का नाम शुभ और पुण्य कर्म है और इसके बरखिलाफ बर्ताव करना अशुभ और पाप कर्म है, यानी स्वास अपने आराम और मतलब के लिये मन और बचन और काया[1] से दूसरों को नुकसान या रंज या तकलीफ पहुँचाना पाप है और वगैर अपने स्वास मतलब के दूसरों को सुख और फायदा पहुँचाना पुण्य कर्म है। जो फायदा और आराम न दे सके, तो इस मनुष्य को चाहिए कि किसी को दुख भी न देवे।

८८—जो कोई इन दोनों किस्म के शुभ और अशुभ कर्मों पर नजर रखकर समझ के साथ कारवाई करेगा, उस से कुल मालिक राजी होकर उसको प्रेम और भक्ति दान यानी अपनी नजदीकी और मुहब्बत की बख्शिश करेगा और जो बरखिलाफ इसके काम करेगा, वह दिन दिन मालिक के दरबार से दूर होता जावेगा, और अंधेरे के घेर में जनम मरन के चक्कर में देहियों के साथ दुख सुख सहता रहेगा।

८९—राधास्वामी मत में इस बात की बहुत ताकीद है कि अभ्यासी

१—शरीर।

ऊपर की लिखी हुई हिदायत के मुआफिक़ कार्रवाई करे। तब प्रेम और भक्ति उसकी दिन दिन बढ़ती जावेगी और अभ्यास में भी आनंद और रस मिलता जावेगा और जो इस हुक्म के मानने में समझ बूझ कर बेपरवाही करेगा, वह अपनी कार्रवाई के एवज[1] में तकलीफ पावेगा और मालिक के चरनों के प्रेम से किसी क़दर खाली रहेगा।

बयान इस बात का कि कोई सच्चा और कुल मालिक ज़रूर है और जीव सुरत उसकी अंश है।

९०—जो कोई निस्बत मौजूदगी कुल और सच्चे मालिक के शक लावे, तो उसको यह कहा जाता है कि देखो चैतन्य सब जगह मौजूद है, पर बिना मदद अपने से विशेष चैतन्य के कुछ कार्रवाई नहीं कर सकता है। जैसे इस लोक में भी चैतन्य मौजूद है, पर बगैर मदद सूरज की रोशनी और गर्मी के यहाँ कुछ रचना नहीं हो सकती और न कायम रह सकती है और यह सूरज मय अपने कुटुम्ब परिवार के यानी तारों के दूसरे, अपने से ऊँचे, सूरज के गिर्द घूम रहा है जोकि इसका मरकज[2] है, यानी यह हमारा सूरज उस सूरज से ताक़त ले रहा है। इस क़दर तो आसमानी इल्म और दूरबीन की मदद से मालूम हुआ। और संत फ़रमाते हैं कि उस बड़े सूरज के मंडल के ऊपर तीन सूरज मंडल एक से एक बहुत बड़े और हैं और इन सबके ऊपर राधास्वामी धाम है, जो कि कुल मालिक और कुल का निज भंडार है। इससे साफ जाहिर है कि एक के ऊपर एक मालिक चला गया है और राधास्वामी कुल के मालिक हैं। राधास्वामी धाम अपार और अनंत है, उसके परे और कोई मंडल या रचना नहीं है।

९१—जो लोग कि अपनी नादानी और बेखबरी से कहते हैं कि कोई मालिक नहीं है और यह रचना आप ही आप मसाले यानी माया से हुई है, किस क़दर ग़लती में पड़े हैं। उनकी देह की कार्रवाई और इस लोक की कार्रवाई से साफ ज़ाहिर है कि कुल रचना का

१—बदले। २—केन्द्र।

ताल्लुक और उसकी कार्रवाई किसी ऊँचे से ऊँचे और बड़े से बड़े स्थान से हो रही है, जैसे देह की कार्रवाई उस धार पर मुनहसिर[1] है जो दिमाग के ऊँचे मुकाम से उतर कर तमाम देह में रगों के मंडलों के वसीले से फैली हुई है। और इसी तरह इस लोक और कुल ऊँचे नीचे लोकों की रचना की कार्रवाई ऊँचे से ऊँचे और बड़े से बड़े सूरज मंडल के वसीले से जारी है। और वह मालिक कुल अंतर्यामी और सर्व समर्थ और महाज्ञानी और सबसे भारी बंदोबस्त करने वाला और कुल का पैदा करने वाला और कुल रचना को चैतन्यता देने वाला यानी कुल जानों की जान है। जो उस ऊँचे देश से धार हर एक मंडल में होकर न आवे, तो सब रचना का खेल बिगड़ जावे और बंद हो जावे।

९.२—इस लोक की कुल रचना, और भी देह की रचना, से साफ जाहिर है कि हर एक देह और उनके अंग अंग के बनाने में कुदरत और समर्थता और इरादा और मतलब और कारीगरी पाई जाती है। फिर यह बातें बगैर महा समर्थ और महाज्ञानी मालिक के किस तरह जाहिर हुईं? और कुल माया और उस के मसाले और शक्तियों पर उस कुल मालिक की कुदरत का असर साफ मालूम होता है, यानी यह सब उसी के हुक्म से पैदा हुईं और अब उसी के हुक्म के ताबे[2] हैं और उसकी मौज के मुआफिक, उसी की ताकत के साथ, जा बजा[3] कार्रवाई कर रही हैं।

९.३—और सुरत, जीव, उसी कुल मालिक की अंश है। देखो जब यह सुरत जिस शरीर में अपना जहूर करती है, जैसे जब किसी दरख्त के बीज से कुल्ला फूटता है यानी आदि धार प्रगट हुई, उसी वक्त से जितनी कि शक्तियाँ हैं, जैसे खैंच शक्ति, हटाव शक्ति और बनाव शक्ति और बिजली, रोशनी और पाँचों तत्त्व और तीनों गुण, सब, उस देह में मौजूद होकर और इसी आकाश से मसाला लेकर, उस देह का बनाव और सम्हाल करते हैं और जब तक कि सुरत उस देह

१—निर्भर। २—आधीन। ३—जगह जगह।

में मौजूद रहे, तब तक, बावजूद कि यह सब आपस में मुखालिफ और उलटे हैं, पर हिल मिल कर काम देते हैं और जिस वक्त कि सुरत उस देह को छोड़ती है, उसी वक्त से आपस में बरखिलाफी के साथ कार्रवाई करके उसका रूप और रंग बिगाड़ देते हैं।

९४—ऊपर के बयान से ज़ाहिर है कि सब तत्त्व और गुण और शक्तियाँ सुरत के हुक्मबरदार[1] हैं। जहाँ यह अपना जहूर[2] करे, वहाँ यह सब हाजिर होकर उसकी तावेदारी में कार्रवाई करते हैं और जब वह उस देह को छोड़ देवे, तब जुदा होकर अपने अपने मंडल में समा जाते हैं। और जोकि[3] यह सुरत ही इस लोक में सत्य है कि इसके आसरे सब रचना सत्य दिखलाई देती है, यानी कुल देहियाँ अपनी अपनी कार्रवाई कर रही हैं और सब देहियों और रूपों की चैतन्य करने वाली भी यही सुरत है और इसी के वसीले से कुल रस और आनन्द और सरूर[4] पैदा होता है, तो अब यही सुरत सत्, चित्, आनन्द स्वरूप हुई। और जोकि यह अमर और अजर है और शब्द का जहूर है, तो यह उसी सिंध रूप सत्, चित्, आनन्द कुल मालिक की अंश साबित हुई, यानी इसका और उसका जौहर एक ही है।

९५—जब यह बात साबित हुई कि कोई कुल मालिक सत्, चित्, आनन्द स्वरूप और सर्व समर्थ और सर्व ज्ञानी जरूर मौजूद है और सुरत, जीव, उसकी अंश है, तो जब तक कि यह अंश अपने अंशी में यानी बूँद अपने सिंध और किरण अपने सूरज में न पहुँचेगी, तब तक इसको परम आनंद प्राप्त नहीं होगा और जब तक माया के घेर में रहेगी, तब तक उसके मसाले के गिलाफ इस पर चढ़े रहेंगे, यानी इसको देहियों में बँट कर कार्रवाई करनी पड़ेगी और उनके साथ दुख सुख और जनम मरन की तकलीफ सहनी पड़ेगी।

९६—इस वास्ते जो इन तकलीफों से बचना चाहे और परम आनंद को प्राप्त होना चाहे, उसको राधास्वामी मत के मुआफिक अभ्यास करके

१—आज्ञाकारी। २—प्रकाश। ३— चूँकि। ४—गहरा आनन्द, मस्ती।

आहिस्ता आहिस्ता इस माया के देश को छोड़ कर अपने निज घर की तरफ चलना जरूर चाहिए और कुल मालिक की मौजूदगी की निस्बत मन में शक नहीं लाना चाहिये, नहीं तो मरने के बाद बहुत पछताना पड़ेगा, और उस वक्त का अफसोस कुछ फायदा नहीं देवेगा।

नीचे दर्जे के मालिकों और औतारों और देवताओं की पूजा का बयान और उसका नतीजा

९७—जो लोग कि औरों को, यानी देवताओं और औतारों को, मालिक समझ कर मान रहे हैं, उनका पूरा और सच्चा उद्धार नहीं हो सकता है। और जो परमेश्वर, ब्रह्म या खुदा को कुल मालिक समझते हैं, वे भी सच्चे कुल मालिक राधास्वामी दयाल से बेखबर हैं और इस वास्ते वे भी माया के घेर से बाहर नहीं जा सकते और इस सबब से जनम मरन के चक्कर से नहीं बच सकते, क्योंकि ब्रह्म और ईश्वर और परमेश्वर या परमात्मा, सब सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल की एक एक कला हैं और माया के संग मिले हुए हैं, यानी उससे मिल कर रचना की कार्रवाई कर रहे हैं। उनके लोक में जो कोई उनकी भक्ति करके पहुँचेगा, वह बहुत काल के लिए सुखी हो जावेगा, पर जनम मरन से बचाव नहीं होगा।

९८—और जितने औतार हुए हैं, वे सब ब्रह्म या विष्णु के हुए हैं और ब्रह्मा, विष्णु और महादेव, यानी तीनों गुण, बड़े देवता हैं और बाकी देवता इनसे उत्पन्न हुए। इस वास्ते जो कोई इनकी भक्ति करेगा, वह इनके लोक में पहुँच सकता है, मगर इनका लोक अमर नहीं है और न वहाँ की रचना अमर है। इस सबब से जनम मरन से छुटकारा नहीं हो सकता है। और बनिस्बत ब्रह्म और परब्रह्म और शक्ति के देश या लोक के, देवताओं और औतारों के लोकों में उम्र भी थोड़ी है यानी वहाँ जनम मरन जल्द होता है और सुख भी ऊपर के लोकों की निस्बत कम है।

९९—इस वास्ते मुनासिब है कि जब कोई परमार्थी काम करना चाहे, तब अच्छी तरह से निर्णय करके अपने सच्चे मालिक की पहचान करे और दूसरों का पक्ष छोड़ कर, सच्चे मालिक की सेवा और भक्ति इख़्तियार[1] करे, तब पूरा फायदा होगा। क्योंकि भक्ति भाव सब जगह बराबर और एकसां बरतना पड़ेगा, पर फल यानी फायदे में हर एक के फर्क होगा।

१००—और जो कोई असली रूप और धाम औतारों और देवताओं से बेखबर हैं और सिर्फ उनकी नक़ल यानी मूरत की पूजा और भक्ति करते हैं और असल का खोज नहीं करते, वे असल को नहीं पा सकते। इस वास्ते उनको उस क़दर सुख भी नहीं मिल सकता जिस क़दर कि असल के पूजने वालों को मिलता है। इनकी सीढ़ी[2] बहुत नीची है।

वर्णन हाल वाचक ज्ञानी और सूफ़ी का और यह कि उनका पूरा उद्धार नहीं होता

१०१—और जो लोग कि इस वक़्त में ज्ञानी और विद्वान और वेदान्ती या सूफी कहलाते हैं, वे भी कुल मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल से बेखबर हैं। इनको पुराने जोगेश्वर, वेदान्ती और ज्ञानी की बानी और वचन से ब्रह्म पद तक का हाल मालूम हुआ, पर वह भी तफसीलवार[3] नहीं, सिर्फ इस क़दर कि ब्रह्म सब जगह व्यापक है और वही सत् चित् आनंद स्वरूप है और माया से न्यारा है और कुल रचना ब्रह्म या आत्मा स्वरूप है। फिर कहीं जाना आना नहीं है। इस क़दर समझ लेकर इस बात का निश्चय कर लेना कि मैं ब्रह्म हूँ और सब ब्रह्म हैं, वास्ते उद्धार के, वक़्त मौत यानी जुदाई शरीर के, काफी समझते हैं। और मन को किसी तरकीब से कुछ दिन अभ्यास करके एकाग्र करना और उसके पीछे ऐसा विचार करते रहना कि मैं कोई शै[4]

१—धारण। २—दर्जा। ३—विस्तार से। ४—चीज़।

रचना में से नहीं हूँ, तत्त्व नहीं हूँ, गुण नहीं हूँ, वगैरह वगैरह। फिर जो कुल कि बाद निषेध सब पदार्थों के बाकी रहा, वही ब्रह्म है और वह ब्रह्म मैं हूँ, यही उनका अभ्यास है। और कोई तरकीब सुरत के चलने और चढ़ने की वे नहीं मानते और कहते हैं कि जब ब्रह्म सब जगह मौजूद है, फिर चलना और चढ़ना क्या जरूर है। और सुरत जीव को ब्रह्म से जुदा या उसका अंश नहीं मानते, सिर्फ ब्रह्म ही मानते हैं।

१०२—और जोगेश्वर ज्ञानी और वेदान्ती, जो पुराने वक्तों में गुजरे, उन्होंने अष्टांग योग[1] यानी प्राणायाम का अभ्यास करके आत्मा को पिंड यानी छः चक्र की हद से न्यारा किया और ब्रह्मांड में चढ़ कर, ब्रह्म पद में पहुँच कर, फरमाया कि ब्रह्म सर्वत्र[2] व्यापक है। उनका यह कहना उस स्थान पर पहुँच कर सही था, क्योंकि वहां पिंडी और ब्रह्मांडी माया बहुत नीचे रह गई और वह शुद्ध ब्रह्म का स्थान था कि जहाँ से सिवाय ब्रह्म के और कोई वस्तु यानी माया वगैरह और उसकी रचना नजर नहीं आती। जैसे ऊंचे पहाड़ पर चढ़कर नीचे देश की रचना नजर नहीं आती, सिर्फ गुबार या बादल छाया हुआ दिखलाई देता है, या जो कोई समुद्र या बड़े दरिया में गहरा गोता मारे, उसको उस वक्त सिवाय पानी के दूसरी चीज नजर नहीं आती, ऐसे ही जोगेश्वर ज्ञानियों को शुद्ध ब्रह्म पद में पहुँचने पर सिर्फ ब्रह्म व्यापक नजर आया और माया और उसकी रचना, जो नीचे थी, वहां से नजर नहीं आई और अमल में वहाँ पहुँचने वाले की यह हालत सच्ची होती है।

१०३—लेकिन हाल[3] के ज्ञानी और वेदान्ती और सूफियों की अजब हालत है कि इन्होंने कोई अभ्यास प्राण और आत्मा के चढ़ाने का अपने घट में नहीं किया और न करने की ताकत और लियाकत रखते हैं, सिर्फ जोगेश्वरों के सिद्धान्त के वचनों को पढ़कर या सुनकर उनका निश्चय करके अपने को ब्रह्म और ज्ञानी और विद्वान मान कर चुप

१—अष्टांग (अष्ट अंग) योग जिसके आठ अंग हैं, यानी पतंजलि ऋषि का बनाया हुआ योग। २—सब जगह। ३—आजकल।

हो बैठे और जो वचन कि उन्हीं जोगेश्वर ज्ञानियों ने निम्बत योग अभ्यास और उसके मंजमों की कार्रवाई के लिखे हैं, उनको छोड़ दिया, यानी मेहनत और अभ्यास वास्ते सफाई और मर्दन करने, यानी काबू में लाने मन और इंद्रियों के, न कर सके और उनके सिद्धान्त के वचनों से ऐसा समझ कर कि जब ब्रह्म सब जगह मौजूद है तो उससे मिलने के लिये अभ्यास करने की क्या जरूरत है और उन वचनों की तामील कि जिनमें अभ्यास के वास्ते ताकीद है, नहीं करते।

१०४—और जोगेश्वर ज्ञानियों ने साफ अपने ग्रन्थों में फरमाया है कि जब तक मन और वासना का नाश न होगा, तब तक तत्व पद[1] का ज्ञान हासिल नहीं हो सकता है और यह कि जब तक किसी में यह चार साधन पूरे पूरे न पाये जावें, वह ज्ञान के ग्रन्थों के पढ़ने का अधिकारी नहीं है और जो कोई बगैर चार साधन हासिल किए, उन ग्रन्थों को पढ़ेगा तो वह पढ़ना उसके हक में जहर कातिल होगा, यानी आत्मघाती[2] हो जावेगा। और वह चार साधन यह हैं—(१) वैराग्य (२) विवेक (३) षट् सम्पत्ति (१—सम यानी अंतःकरण का रोकना, २—दम यानी बाहर इंद्रियों का रोकना, ३—उपरति यानी संसार के दुख सुख और ख्वाहिशों से उपराम यानी न्यारे रहना, ४—तितिक्षा यानी तकलीफ की बरदाश्त करना, ५—श्रद्धा यानी परमार्थ की सच्ची कदर और चाह और गुरु और महात्माओं और उनके वचनों में भाव और प्यार, ६—समाधानता यानी होशियारी और पूरी समझ के साथ गुरू और महात्माओं के वचन को सुनना और चित्त में धर के उनके मुआफिक बर्ताव करना) और (४) मुमुक्षुता, यानी सच्ची और तेज चाह वास्ते हासिल करने मुक्ति यानी अपने जीव के कल्यान के।

१०५—अब मालूम होवे कि इन चारों साधनों का हासिल होना और मन और वासना का नाश होना, बगैर योग अभ्यास की मदद से किसी कदर पिंड से न्यारे होने के, यानी बगैर छः चक्र के बेधने[3] के,

१—असली पद। २—विनाशकारी। ३—काबू में करने।

किसी सूरत में मुमकिन नहीं है। इसी सबब से आजकल के ज्ञानी वाचक और विद्यावान कहलाते हैं, यानी बातें तो पूरे जोगेश्वरों की सी बनाते हैं और उनके मन और इन्द्रियों की हालत और उनका व्योहार व बर्ताव संसारियों और अज्ञानी लोगों के मुआफिक है। जो ब्रह्म आनन्द या आत्म आनन्द उनको प्राप्त हुआ होता, तो उस आनन्द में मगन और बेपरवाह रहते और मेलों और तमाशों में और देशों और मकानों की सैर के वास्ते देश विदेश मारे मारे न फिरते और रेल खर्च और भंडारों के लिये इससे उससे माग कर रुपए न जोड़ते, बल्कि जो सच्ची चाह परमार्थ की और अपने जीव के कल्याण का दर्द उनके दिल में होता, तो किसी पूरे गुरू या महात्मा को तलाश करके उसके सन्मुख दीनता और आधीनता[1] के साथ रह कर कोई दिन सुरत और मन को घट में चढ़ाई का अभ्यास करते कि जिससे चारों गोचर पूरे पूरे उन में आ जाते और मन और वासना का किसी कदर नाश हो जाता और तब ज्ञान के वचन सुनने और समझने के अधिकारी बन जाते।

१०६—लेकिन अफसोस की बात है कि इन वाचक ज्ञानियों को अपने मन और इन्द्रियों के हाल की भी खबर नहीं कि किस चक्कर में उनको डाल कर घुमा रहे हैं और जो कोई उनको चितावनी का वचन सुनावे, तो उससे लड़ने को तैयार होते हैं और जो संतों का भेद और जुगत, मन और सुरत के चढ़ाने की, सुनाना चाहे, तो उससे वाद विवाद[2] करते हैं और अपने जीव के हित के वचनों का निरादर करके मुतलक नहीं सुनते। यह लोग आप भी ठगाये गये और जो कोई उनके वचन सुनेगा और मानेगा, वह भी धोखा खावेगा और अपने जीव के कल्याण में आप खलल डालेगा यानी आत्मघाती हो जावेगा।

१०७—गौर करने से मालूम हो सकता है कि चैतन्य में बमबब हायल होने (परदा डालने) माया के बहुत दर्जे हो गये हैं। यानी ऊँचे से ऊँचे दर्जे का चैतन्य महा निर्मल और लतीफ है और जहाँ से कि माया का जहूर हुआ है, उससे नीचे की तरफ दर्जे बदर्जे माया की

१—गरीबी। २—बहस। ३ बिलकुल, जरा भी।

कसाफत[1] में चैतन्य भी मलीन हो रहा है और इस लोक का चैतन्य निहायत कसीफ यानी मलीन है कि अपनी ताकत से कोई कार्रवाई रचना की नहीं कर सकता है, और सूरज मंडल के विशेष चैतन्य का आधीन है। इसी तरह सूरज मंडल का चैतन्य अपने से ऊँचे के सूरज मंडल के चैतन्य का आधीन है, यानी माया की हद में समान[2] और विशेष चैतन्य का हिसाब नीचे से ऊपर तक चला गया है और माया के घेर के पार महा निर्मल चैतन्य देश है। बगैर वहाँ पहुँचे, किसी का सच्चा और पूरा उद्धार नहीं हो सकता है। फिर वाचक ज्ञानियों ने जो चैतन्य को व्यापक मान कर ऊपर की तरफ चलना चढ़ना नहीं माना, तो किस कदर ग़लती करी और अपने जीव के उद्धार में किस कदर धोखा खाया, क्योंकि इस देश का चैतन्य मलीन माया के संग से आप मलीन हो रहा है और जनम मरन यानी रचना के भाव[3] और अभाव[4] में पड़ा हुआ है। फिर यहाँ रह कर, यानी पिंड में बैठ कर, जहाँ से कि दुनिया की कार्रवाई मन और इन्द्रियों के वसीले से हो रही है, किसी का छुटकारा जनम मरन और देह और दुनिया के दुख सुख से नहीं हो सकता है और यही सबब है कि वाचक ज्ञानियों की हालत नहीं बदलती, यानी उनके मन और इंद्रियों का बर्ताव मुआफिक संसारी और अज्ञानी जीवों के रहता है।

१०८—जोगेश्वर ज्ञानियों ने ब्रह्म में तीन दर्जे कायम किये यानी माया शबल ब्रह्म जो कि माया से मिलकर रचना कर रहा है और साक्षी ब्रह्म जो कि उसको मदद दे रहा है और शुद्ध ब्रह्म, जहाँ कि माया निहायत सूक्ष्म और बीज रूप है, और वह पद रचना की कार्रवाई से किसी कदर न्यारा है यानी गुप्त मदद दे रहा है। अब जो मुआफिक समझ वाचक ज्ञानियों के, ब्रह्म के सर्वत्र[5] व्यापक होने में कोई भेद नहीं था, तो जोगेश्वर ज्ञानियों ने यह दर्जे क्यों मुक़र्रर किये और माया शबल ब्रह्म और साक्षी ब्रह्म के मंडल में क्यों नहीं ठहरे और योग

१—मलीनता। २—सामान्य, साधारण। ३—उत्पत्ति। ४—प्रलय। ५—सब जगह।

अभ्यास करके, पहले पिंड में न्यारे होकर और फिर ब्रह्मांड में चढ़ कर, शुद्ध ब्रह्म पद में पहुँच कर क्यों विश्राम किया ?

१०९—इससे साफ जाहिर है कि वाचक ज्ञानी निरे विद्यावान हैं, यानी परमार्थी किताबें सिर्फ मुतअल्लिक[1] ज्ञान के पढ़ कर अपने आप को पूरा समझते हैं और ब्रह्म रूप मानते हैं और अमल यानी अभ्यास कुछ नहीं किया या करते हैं। विद्या यानी इल्म, बगैर अमल यानी अभ्यास के, खाली है। इस वास्ते यह लोग बेअमल यानी अभ्यास से खाली रह कर अहंकारी और मानी हो गये और अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारी, यानी घट में चलने और चढ़ने को फजूल समझ कर संसारी और अज्ञानी जीवों के गिरोह में शुमार किये गए, बल्कि उनसे भी कम, क्योंकि उन लोगों के चित्त में थोड़ी बहुत दीनता है और जो कोई महात्मा उनको मिल जावें तो उनके वचन को मानकर उनकी दया के भागी[2] हो जावें और अपना थोड़ा बहुत उद्धार का रास्ता जारी कर लेवें। और यह वाचक ज्ञानी इस कदर अहंकारी और बेपरवाह हो गये कि अपने बराबर किसी को ख्याल नहीं करते और किसी के वचन को, जो इनके हित के वास्ते कहे, नहीं मानते हैं।

११०—और मालूम होवे कि वाचक ज्ञानी करीब करीब नास्तिक हैं, यानी जब उन्होंने अपने आप को ब्रह्म माना तो उनको किसी की सेवा या भक्ति करने की जरूरत नहीं रही। तो यह असली ब्रह्म, जो कि तमाम तीन लोक की रचना का कर्ता धर्ता[3] है, गायब कर दिया गया और उसकी भक्ति मौकूफ[4] हो गई। अब ख्याल करो कि ऐसे ज्ञान का मत नास्तिक मत हुआ या क्या, क्योंकि यह वाचक ज्ञानी जीवों से अपनी भक्ति और सेवा तो कराते हैं और आप किसी की भक्ति या सेवा नहीं करते, बल्कि भक्ति से विरोध रखते हैं और कहते हैं कि जो कोई भक्ति करेगा, उसका जनम मरन दूर न होगा। और अपना जनम मरन नहीं मानते हैं, यानी ऐसा ख्याल करते हैं कि वे देह छोड़ने पर जरूर मुक्त हो जावेंगे। और हाल यह है कि अपनी जिन्दगी भर में

१—संबंध में। २—अधिकारी। ३—धारण करने वाला। ४—खत्म।

मुक्ति की कुछ भी हालत या कैफियत नहीं पैदा करी। तब मरने पर किस तरह मुक्ति मिल सकती है?

१११—जो लोग कि मदरसों में विद्या पढ़ कर दर्जा हासिल करते हैं, उनमें से बाजे इल्म फिलासफी और हिकमत[1] की किताबें पढ़ कर और कुल मालिक की मौजूदगी में शक लाकर नास्तिक मत की तरफ रुजू[2] करते हैं। उनका हाल भी थोड़ा बहुत वाचक ज्ञानियों के मुआफिक समझना चाहिए, यानी बाजे उनमें से चैतन्य को सब जगह व्यापक मान कर उसकी और माया की मिलौनी से रचना का जहूर[3] कहते हैं, पर उस चैतन्य को समझवार और शक्तिमान[4] नहीं मानते।

और कोई कोई चैतन्य को न्यारा नहीं मानते। उसको माया के मसाले का खुलासा[5] ख्याल करते हैं और कहते हैं कि जब जीव की मौत होती है, उस वक्त माया का मसाला यानी तत्त्व और गुण वगैरह सब आपस में जुदा हो कर अपने अपने मंडल में जा समाते हैं और वह चैतन्य कुव्वत[6], जो इनकी मजमूई शक्ल (मिलौनी) से पैदा हुई थी, गुप्त यानी गायब हो जाती है और फिर मनुष्य के आपे का कुछ निशान बाकी नहीं रहता है। इस वास्ते जो कुछ काम किया जाता है, वह इसी जिन्दगी के आराम के वास्ते है, और दूसरों को भी आराम देना चाहिये। इससे ज्यादा वे लोग कुछ नहीं मानते और मालिक की भक्ति करने वालों को नादान समझते हैं।

११२—यह सब मत काल पुरुष ने, वास्ते भरमाने और सत्तपद में बेखबर रखने जीवों के, विद्या और बुद्धि की मदद से, प्रगट कराये और जो जीव कि उस किस्म की तबियत रखते हैं, वे उनमें शामिल होकर सच्चे मालिक से मुनकिर (नास्तिक) हो जाते हैं और कुल मजहबों पर, जो किसी को मालिक मानते हैं, तान करते हैं और कहते हैं कि उनके आचार्यों ने अपनी नामवरी और फायदे की नजर से उन मतों को मूर्ख जीवों में जारी किया और उनको खौफ और उम्मेद दिखा कर

१—तत्त्व ज्ञान। २—तवज्जह। ३—पैदा होना। ४—सार तत्त्व ५—शक्ति।

अपने वचनों में खूब मजबूत बाँधा। असल में कोई मालिक नहीं है और बाद मौत कर्म और उसका फल बाकी नहीं रहता है और न कहीं स्वर्ग और नरक वगैरह हैं।

११३—इन लोगों ने सिर्फ माया के पदार्थों के भोग विलास को अपना आनंद और मक्सद समझा है और जीवों की, अपनी ताकत के के मुआफिक, मदद करना उपकार समझा है। इनकी समझ पर अफसोस आता है कि कुल कारवाई इस रचना की अपनी आंख से देखते हैं कि वह किसी न किसी रूह की ताकत से जारी है और वह रूह किसी न किसी किस्म की देह यानी जिस्म में बैठ कर कारवाई करती है और, मिस्ल सूरज और चांद वगैरह, बेशुमार अरसे से उनका जहूर[1] और कयाम[2] चला आता है और बेशुमार अरसे तक जारी रहेगा। इसी तरह इस मंडल के ऊपर और मंडल मालूम होते हैं और कानून कुदरत को, निज़ाम फलकी[3] और जमीनी, यानी ऊंचे और नीचे देश की रचना के बन्दोबस्त में, देखकर साबित होता है कि उनका बन्दोबस्त मुकर्रर किये हुए कायदों के मुआफिक जारी है और बेशुमार अरसे से ऐसा ही चला आया है और जारी रहेगा। और इस दुनिया के बन्दोबस्त में भी कोई न कोई अफसर और कारकुन की मार्फत कारवाई जारी होती है। इसी तरह घर का बन्दोबस्त भी किसी घर के बड़े की मार्फत जारी होता है। और जोकि इस दुनिया की कारवाई ऊपर की रचना की छाया यानी अक्स और नक़ल समझी जाती है, इस सबब से मुमकिन नहीं है कि कच्चे देश की रचना का बन्दोबस्त, और इसी तरह कुल रचना का बन्दोबस्त, बगैर किसी अफसर या मालिक के जारी होवे। अलबत्ता एक के ऊपर एक अफसर या मालिक मुकर्रर है और सबके परे और सबके ऊपर कुल मालिक का देश और तख्त है। वहां से आदि में कारवाई रचना की शुरू हुई और सब बन्दोबस्त और कायदे वहीं से मुकर्रर होते चले आए। और जोकि कुल रचना के हर एक जिस्म और चीज के बनाने में इरादा और मतलब और कुदरत और कारीगरी पाई जाती है (जो समर्थ कर्ता

१—उत्पत्ति। २—ठहराव। ३—आस्मानी सृष्टि का प्रबंध।

की मौजूदगी के गवाह हैं), फिर जो कोई रचना को आप से आप बग़ैर किसी कर्त्ता के मानते हैं, वह सरीहन[1] गलती में पड़े हुए हैं। पर अपने मन हठ से इस बात के क़ायल नहीं होना चाहते। सो इसका फल उनको वक्त मख़्त तकलीफ के, इस जिन्दगी में या वक्त छोड़ने इस देह के, मालूम पड़ेगा।

११४—बहुत से मुआमले तसदीक़ किए हुए ऐसे हैं कि जहाँ एक शख़्स ने पैदा होकर अपने पिछले जन्म का हाल बयान किया और जो उसके कलाम की तसदीक़ उसके पिछले जन्म की सकूनत (रहने) की जगह से की गई, तो सब बातें दुरुस्त निकलीं। फिर जो यह लोग रूह, सुरत, का मरने वक्त अभाव मानते हैं, निहायत गलती करते हैं। ज़्यादा इस मुआमले को यहाँ तूल[2] करना मुनासिब नहीं। जिस क़दर लिखा गया है, उसी क़दर समझदार सतसंगी खोजी के वास्ते काफी है और जो लोग वादविवाद करें, वह किसी दलील से कायल नहीं होवेंगे, उनसे बातचीत करना फ़ज़ूल है।

समाजों की परमार्थी कार्रवाई

११५—जो समाज जहाँ तहाँ आज कल जारी हैं, उनके आचार्य विद्यावान और बुद्धिमान हुए। उन्होंने हालत इस वक्त के जीवों की देखकर कि खान पान और आज़ादगी की ख़्वाहिश से अपने मत को छोड़ कर ग़ैर मत में शामिल होते चले जाते हैं या इरादा शामिल होने का रखते हैं, इस सबब से मुनासिब और मसलहत वक्त समझ कर, क़रीब क़रीब वेदान्त शास्त्र के कायदे और उसूल के मुआफिक, नया मत खड़ा किया कि उसमें हर तरह की आज़ादगी खान पान वग़ैरह और शादी ब्योहार की, मिस्ल ईसाई मत वालों के, जीवों को दे दी। और जो ज़ाहिरी रसूम[3] कि पुराने वक्तों से जारी हैं और उनको लोग अपने मज़हब का एक अंग समझते हैं और उनके जारी रहने में इस जमाने में सिवाय हर्ज और तकलीफ के कोई खास दुनियवी या परमार्थी

१—स्पष्ट रूप से। २—लंबा। ३—रस्में।

फायदा नजर नहीं आता, उनकी कैद छुड़ा दी, और एक मालिक का, जिसको मुताबिक वेदान्त शास्त्र के ब्रह्म कहते हैं, इष्ट बंधवाकर उसकी स्तुति और महिमा और शुकराने के भजन या बानी का पढ़ना या गाना जारी किया और नकल यानी मूर्ति वगैरह बना कर पूजा करने को मना और निषेध किया और तीर्थ व्रत और औतार और देवताओं की पूजा (मूरतें बनाकर), जो कसरत से जारी थी, मौकूफ कर दी, और जो कोई ज्यादा शौक वाले मालूम हुए, उनको वास्ते प्राणायाम यानी अष्टांग योग के अभ्यास करने की हिदायत की। लेकिन जोकि यह अभ्यास निहायत कठिन और उसके संजम भी बहुत कठिन हैं, इसका सच्चा अभ्यासी उनके बेड़े[1] में जाहिरा कोई नजर नहीं आता। और कोई कोई ब्रह्म को आकाशवत्[2] व्यापक मान कर उसका ध्यान आंख बंद करके या खुली आंखों से, बगैर मुकर्रर करने किसी खास मुकाम के, अंतर या बाहर में करते हैं। इस अभ्यास से थोड़ी सफाई होती है और जो कोई प्रेम सहित बानी का पाठ करते हैं या भजन गाते हैं, तो वह भी उस वक्त किसी कदर अपने मन में गद्गद[3] होकर प्रेम की हालत में थोड़ी देर के वास्ते भर जाते हैं, मगर वह हालत ज्यादा ठहराऊ नहीं होती और न उसकी तरक्की सिर्फ इसी कदर कार्रवाई से मुमकिन है।

इन समाजों में सिर्फ इसी कदर साधन वास्ते प्राप्ति मुक्ति के जारी हैं।

११६—यह सब कुल और सच्चे मालिक के भेद और अंतर में मन और सुरत के चढ़ाने के अभ्यास से बिलकुल बेखबर हैं और इस सबब से उन जीवों का, जो इन समाजों में शामिल हैं, सच्चा उद्धार बल्कि किसी ऊँचे दर्जे का भी उद्धार या मुक्ति मुमकिन नहीं। बहुत से लोग तो इन समाजों में सिर्फ नामवरी और दुनिया की कार्रवाई या आजादी के हासिल करने के लिए शामिल होते हैं और अमल में परमार्थ की चाह उनके दिल में बिलकुल नहीं मालूम होती है।

१—समाज। २—आकाश की तरह। ३—गद्गद् होकर—प्रेम में भर कर।

११७—एक नुक्स (कमर) इन समाजों में और भी है कि वे गुरू की जरूरत नहीं समझते और न पूरे गुरू का खोज करते हैं। सबब इसका यह है कि इनके मत में भेद और अभ्यास नहीं है, और इसी सबब से इनको जरूरत पूरे गुरू की मदद की नहीं होती, क्योंकि इनके मत में सिर्फ किताबों का पढ़ना और पढ़ाना या भजन वगैरह का गाना जारी है और इनकी किताबों में भेद गुप्त या तरकीब अभ्यास अंदरूनी (अंतरी) का कोई जिक्र नहीं है कि जिसके वास्ते जरूरत दरियाफ़्त की भेदी और अभ्यासी से होवे। बल्कि उनमें तारीफी हाल या महिमा और सिफत[1] मालिक की, या मसले[2] इल्मी और अक्ली या हाल तत्वों और गुणों का, जो स्थूल रचना की कार्रवाई कर रहे हैं, दर्ज है। इस सबब से जिस किसी ने थोड़ी बहुत रस्मी विद्या हासिल की है वह उन किताबों को पढ़कर उनका मतलब अपनी समझ के मुआफिक समझ सकता है। यह लोग भेदी और अभ्यासी गुरू की कदर नहीं जानते हैं, क्योंकि इनको अपने जीव के सच्चे उद्धार और अपने मालिक से मिलने की ख्वाहिश बिलकुल नहीं है।

११८—इसी तरह कर्मकांड के शास्त्र भी सिर्फ बाहरी रस्मों और उनकी कार्रवाई का जिक्र करते हैं। और इसी सबब से वहाँ भी पूरे गुरू की जरूरत नहीं है, सिर्फ विद्यावान गुरू को, जो होम और यज्ञ वगैरह और जनम मरन और दूसरे समय के कर्म, किताबों को पढ़कर, कराते हैं और जिनको वे आचार्य कहते हैं, काफी समझा जाता है। और जो लोग आप थोड़ी बहुत संस्कृत जबान से वाकफियत रखते हैं, वे आप सब कार्रवाई किताबों को देखकर कर सकते हैं। यह लोग भी यानी कर्मकांडी पूरे गुरू की कदर नहीं जानते, और न इनके मन में खोज सच्चे परमार्थ का है, सिर्फ कर्म करने से मुक्ति हासिल होने का यकीन करते हैं। मगर यह बात सही नहीं है, क्योंकि जब तक उपासना करके सच्चा ज्ञान हासिल न होगा, मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। और संतों के बचन के मुआफिक यह मुक्ति भी नातमाम[3] है,

१—गुण। २—समस्याएँ। ३—अधूरी।

यानी पूरा और सच्चा उद्धार सच्चे ज्ञानियों का भी जिनको योग अभ्यास करके ज्ञान प्राप्त हुआ है, नहीं होता है, जब तक कि संत मत के मुआफिक अभ्यास करके परब्रह्म पद के पार संत देश में न जावें। फिर कर्मकांडी और बाहरमुख उपासना मुक्ति वगैरह की करने वालों को सच्ची मुक्ति किस तरह हासिल हो सकती है?

११९—ऊपर के लिखे हुए से जाहिर है कि बानक ज्ञानी और समाज वाले और कर्मकांडी घट के भेद से बिलकुल बेखबर हैं। और हरचंद उनके मत में शब्द की महिमा बहुत की है और साफ लिखा है कि आदि में ओम् शब्द प्रगट हुआ और इसी शब्द से कुल रचना पैदा हुई और तीन लोक की रचना की ताकत और मसाले का भंडार भी यही शब्द है, पर यह लोग शब्द का खोज नहीं करते और न रचना का भेद दरियाफ्त करते हैं कि कैसे ओम् शब्द से तीन लोक की रचना हुई। जो यह ख्वाहिश इनके दिल में होती, तो जरूर भेदी और अभ्यासी गुरू की जरूरत इनको पड़ती।

१२०—जरा गौर करने से मालूम होगा और वेद के उपनिषदों में भी लिखा है कि जब तक अभ्यासी ओम् शब्द यानी शब्द ब्रह्म को पहले प्राप्त हो कर उसके पार न जावेगा, तब तक वेद मत के मुआफिक उद्धार न होगा, यानी अशब्द ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होगी क्योंकि ओम् शब्द को ही महतत्त्व कहते हैं और यही तीन लोक की रचना के मसाले का भंडार है। फिर जब तक उसके पार न जावेगा, तीन लोक की रचना के घेर से न्यारा नहीं होगा। यह भेद जोगेश्वर ज्ञानी जानते थे और वे योग अभ्यास करके ओम् पद के पार पहुँचे, पर आजकल के ज्ञानी इस रास्ते और भेद से बिलकुल बेखबर हैं और उनको ख्वाहिश उसके मालूम करने और योग अभ्यास करने की नहीं है, सिर्फ अपनी विद्या और बुद्धि की समझ के मुआफिक अपनी विदेह मुक्ति का यकीन करते हैं, यानी बाद मरने के मुक्ति का हासिल होना मानते हैं। और यह भारी गलती और भूल है और सच्चे जोगेश्वर ज्ञानी और उपनिषदों के कलाम के बरखिलाफ है।

१२१—रस्मी[1] विद्या तो विद्यावान् गुरू से हासिल हो सकती है। सो विद्यावान् गुरू को यह सब मानते हैं, पर ब्रह्मज्ञान वग़ैर ब्रह्मनेष्ठी गुरू के हासिल नहीं हो सकता है। सच्चे ज्ञानियों ने तीन दर्जे ब्रह्मज्ञानियों के मुक़र्रर किये हैं—ब्रह्मश्रोत्रिय, ब्रह्मनेष्ठी, ब्रह्मसंतुष्ट। ब्रह्मश्रोत्रिय विद्यावान् ज्ञानी को कहते हैं। यह अव्वल सीढ़ी है। ऐसे ब्रह्मज्ञानी से जीव का कारज नहीं हो सकता जब तक कि वह पढ़े और सुने के मुआफ़िक़ नेष्ठा यानी अभ्यास न करे। ब्रह्मनेष्ठी अभ्यासी को कहते हैं कि वह अभ्यास करके ब्रह्मपद में पहुँचना चाहता है और ब्रह्मसंतुष्ट उसको कहते हैं कि जो ब्रह्मपद को प्राप्त होकर शान्त स्वरूप हो गया।

१२२—अब ख़्याल करो कि जितने ज्ञानी आजकल नजर आते हैं, वे सब विद्यावान् हैं, यानी विद्या पढ़ कर उन्होंने ब्रह्म का निश्चय[2] किया है। यह निश्चय इल्मी और अक़्ली है। जीव का कल्यान इससे नहीं हो सकता है, जब तक कि उस विद्या के मुआफ़िक़ अमल यानी अभ्यास न किया जावेगा। और वह अभ्यास अंतरमुख उपासना ब्रह्म पद की है, यानी प्रेम और भक्ति के साथ, जो अभ्यास कि संतों ने इस वक़्त में जारी फ़रमाया है, उसकी कमाई करके पिंड देश से न्यारे होकर ब्रह्मांड में चढ़कर पहुँचना, क्योंकि प्राणायाम का अभ्यास, जो पिछले वक़्त में जारी था, जीवों से बिलकुल नहीं बन सकता है। उसके संजम वग़ैरह निहायत कठिन हैं।

इन मतों के अभ्यास की कमाई बग़ैर मदद अभ्यासी यानी नेष्ठावान् या संतुष्ट गुरू के किसी तरह मुमकिन नहीं है। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि यह बाचक ज्ञानी सिर्फ़ विद्या में अटके रह गये और अंतरमुख अभ्यास इनसे नहीं बना। इस वास्ते इन्होंने अभ्यासी गुरू का खोज नहीं किया और जो कोई ऐसा गुरू मिले तो उसके बचन को भी नहीं मानते और नहीं सुनते हैं। यह लोग साफ़ खिलाफ़ बचन सच्चे जोगेश्वर, वेदान्ती या ज्ञानी और वेद मत के

१—साधारण, संसारी। २—विश्वास।

कार्रवाई कर रहे हैं और फिर अपनी गलती और भूल के मन हठ[1] और अहंकार में कायल नहीं होते।

१२३—यह हाल कुल मतों के लोगों का है कि अपने आचार्यों के वचन के बरखिलाफ कार्रवाई कर रहे हैं, यानी नीचे के दर्जे की बातों में अटक रहे हैं या अपने मन और बुद्धि के बमीले से बाहरमुख पूजा ईजाद (नई जारी) करके जीवों को उस में भरमा रहे हैं और अपने रोजगार के खातिर सच्ची बात को छिपाते चले आये हैं, यहाँ तक कि अब वे उन सच्ची बातों से आप भी बेखबर रह गए। और जो कोई उन बातों को जनावे, उससे विरोध करते हैं और बावजूद कि आप अपने आचार्यों के वचन से गाफिल और बेखबर हैं, उलटा उस समझाने वाले को निंदक करार देकर[2] आम जीवों को उलटे वचन सुना कर सच्चे रास्ते पर चलने से बाज रखते हैं। यानी इन्होंने अपना अकाज किया और औरों का भी अकाज करते हैं।

१२४—सच्चे परमार्थी को ऐसे लोगों और बाहरमुखी पूजावालों के संग से कतई परहेज करना चाहिये और उनके वचनों को सुनना नहीं चाहिये बल्कि निष्ठावान या अभ्यासी गुरु से (और जो मिल जावें तो संतुष्ट गुरु से) मिलकर उनसे अभ्यास की जुगत दरियाफ्त करे और, जिस कदर बन सके, अभ्यास करके अपने अंतर में आनंद हासिल करना और जीते जी अपनी मुक्ति होती हुई देखना चाहिये।

संत सतगुरु और साध गुरू की पहचान

१२५—राधास्वामी मत में संत सतगुरु या साध गुरु की खास पहचान यह रक्खी है:—

(१) यह कि सुरत शब्द मार्ग के भेदी और अभ्यासी होवें, और घट का भेद और जुगत अभ्यास की, मय[3] नाम स्थानों और शब्दों

१—मन की जिद के कारण। २—करार देकर—कह कर। ३—साथ।

के, समझाते होवें और सिवाय इसके दूसरे किस्म के अभ्यास की हिदायत न करते होवें।

(२) यह कि दर्दी खोजी को फौरन् वचन सुन कर और अभ्यासियों की हालत देख कर दिल में शान्ति और आनंद पैदा होगा और जिस कदर उसके संशय और संदेह दूर होते जावेंगे और प्रश्नों के पूरे जवाब मिलते जावेंगे, उसी कदर उसकी प्रीति और प्रतीति संत सतगुरु या साधगुरु के चरनों में बढ़ती जावेगी और अंतर में राधास्वामी दयाल की दया के परचे पाकर यकीन मजबूत होता जावेगा और प्रेम दिन दिन बढ़ता जावेगा। इससे बढ़कर यानी वचन और भेद से ज़्यादा कोई पहचान नहीं है कि जिससे सच्चे परमार्थी के दिल में थोड़ा बहुत यकीन पैदा होवे कि यहाँ से मेरा परमार्थी काम बनेगा।

(३) यह कि जो कोई कुछ अरसे तक उनका रात दिन सतसंग करे और उनकी रहनी गहनी और बोल चाल और व्योहार और बर्ताव को देखे, तो उसके मन में दिन दिन इस बात का यकीन होता जावेगा कि वे जरूर पूरे अभ्यासी हैं और रहनी उनकी सतोगुनी है और उसका परमार्थ उनके वसीले[1] से जरूर बन जावेगा। सिवाय इसके और जो कोई पहचान है, वह सिवाय सुरत शब्द अभ्यासी के दूसरा नहीं परख सकता है, क्योंकि अभ्यासी की हालत को अभ्यासी ही परख और समझ सकता है, दूसरे की ताकत नहीं है।

१२६—जो कोई पुरानी किताबों के मुआफिक महात्माओं के लक्षण पढ़ कर किसी महात्मा या अभ्यासी की पहचान किया चाहें, तो उनको हरगिज पहचान नहीं आवेगी, क्योंकि जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और मन और इन्द्रियों के चक्कर में आप पड़े हैं और मालिक के भेद और उसके मिलने की जुगत से बेखबर हैं, उनकी क्या ताकत है कि जो इनके चक्कर से न्यारे बरत रहे हैं या इन

१—जरिये।

क़ुव्वतों पर किसी क़दर सवार हैं, यानी उनको अपने क़ाबू में लाये हैं, उनकी हालत की थोड़ी बहुत परख और पहचान कर सकें? ऐसे लोग हमेशा धोखा खाते हैं और धोखा खावेंगे।

१२७—इस वास्ते सच्चे परमार्थी को मुनासिब है कि पहले सिर्फ वचन की पहचान करे, यानी जिनके दर्शन और वचन और संग से कुल मालिक के चरनों में भय और भाव पैदा होवे और परमार्थ की क़दर और बड़ाई चित्त में समावे और दुनिया और उसके सामान दिन दिन ओछे और रूखे और फीके मालूम होते जावें और जिन चीजों और बातों में कि संसारी जीव अटके और फंसे हुए हैं, उनसे उसकी तबीयत आहिस्ता आहिस्ता हटती जावे, तो जानना और समझना चाहिये कि ऐसों के संग और उपदेश से जरूर एक दिन संसार और उसके बंधनों से छुटकारा हो जावेगा और परम पद और परम आनंद की प्राप्ति हो जावेगी। इससे ज़्यादा हाल उनके अभ्यास और उनकी गति का, जब तक कि यह आप कोई दिन अभ्यास न करेगा, तब तक नहीं मालूम होगा।

फिर उन्हीं का कोई दिन सतसंग करे और जब उनकी रहनी और बर्ताव थोड़ा बहुत देख ले, तब उनमें अपना पूरा भाव लावे और जिस क़दर बने, उनकी आज्ञा अनुसार कारवाई परमार्थ की करे और जिस बात में कसर पड़े, उसके दूर होने के वास्ते उनकी और राधास्वामी दयाल की दया मागता रहे। रफ़्ता रफ़्ता एक दिन उसका कारज सिद्ध[1] हो जावेगा।

सच्चे परमार्थी के थोड़े बहुत लक्षण और स्वभाव यहाँ लिखे जाते हैं

१२८—हर एक परमार्थी को चाहिए कि इन लक्षणों के मुआफ़िक अपने मन के हाल और चाल को परखता चले:—

(१) परमार्थी का मन कोमल और चित्त मुलायम होना चाहिए,

१—सफल।

ताकि किसी के साथ सख्ती न करे और दुखियों का दुख तवज्जह से सुनकर जो बन सके तो अपनी ताकत के मुआफिक उसकी मदद करे, नहीं तो उसकी हमदर्दी, गमख्वारी[1] और दिलदारी[2] करे।

(२) परमार्थ की चाह सच्ची होवे और सच्चे परमार्थ का खोज बराबर जारी रहे और जब उसका पता लग जावे, तब वादविवाद[3] और पक्षपात छोड़ कर, उसको दिल से कबूल करके जो अभ्यास कि उसके हासिल करने के वास्ते बताया जावे, उसकी सच्चे मन से कार्रवाई करे।

(३) कुल मालिक की मौजूदगी का पूरा यकीन मन में होवे और उसकी भक्ति करने के वास्ते नई नई उमंग मन में उठती रहें।

(४) जो कोई सच्चे कुल मालिक का पता और भेद सुनावे, वह शख्स प्यारा लगे और दीनता के साथ उसका संग बारम्बार करे और उससे पूरा भेद और जुगत लेकर, जिस कदर जल्दी बने, अभ्यास शुरू करके अपने अंतर में थोड़ा बहुत रस और आनंद लेवे।

(५) क्षमा और बरदाश्त करना उसकी आदत हो जावे और जहाँ तक मुमकिन होवे, किसी से गुस्सा या तकरार या झगड़ा न करे।

(६) संसारी लोग और माया के पदार्थों से मन में किसी कदर नफरत होवे, यानी इनसे मिलने में मन राज़ी और खुश न होवे।

(७) सच्चे परमार्थ की कार्रवाई में संसारी लोगों का खौफ और शर्म न करने का इरादा रक्खे, और जिस कदर बने, इसी मुआफिक बर्ताव शुरू करे।

(८) सच्चे मालिक की भक्ति तन मन और धन से शौक के साथ करने की चाह बनी रहे और जिस कदर बन सके, उसकी कार्रवाई जारी करे।

(९) गुरू और मालिक की प्रसन्नता की औरों की प्रसन्नता पर, जहाँ तक मुमकिन होवे, मुख्यता रक्खे।

१—सहानुभूति। २—तसल्ली। ३—बहस।

(१०) मन और इन्द्रियों को शौक के साथ, जिस कदर बने, काबू में लाने का इरादा मजबूत रक्खे।

(११) जो काम या चाल या रस्म कि उसके परमार्थ की कार्रवाई में विघ्नकारक[1] होवें, उनसे जिस कदर बने बचाव करे।

(१२) निन्दक लोगों के वचन सुनकर विचार के साथ कार्रवाई करे और गौर करके समझे और विचारे कि उनकी निन्दा किस कदर गलत और किस कदर सही है, और जो सही है, उसमें क्या नुकसान है, या यह कि परमार्थी फायदा उसमें किस कदर है। और जो अपनी समझ में कोई बात बखूबी[2] न आवे, तो प्रेमी सतसंगी से उसका हाल अलहदगी में दरियाफत करके अपना इत्मीनान और तसल्ली करे।

(१३) किसी तरह का अहंकार या मान, जात पात और धन और हुकूमत और गुण वगैरह का, अपने मन में परमार्थी कार्रवाई और सतसंग में न रक्खे।

(१४) अपनी कमियों और औगुनों का ख्याल करके आपको निबल और नाचीज[3] और नाकारा[4] देखना और समझना रहे और हर एक से प्यार और दीनता के साथ बर्ताव करे और उन कमियों के दूर करने की बराबर कोशिश जारी रक्खे।

(१५) जहाँ तक बने, ईर्षा और विरोध और क्रोध को अपने मन में न आने देवे और किसी की बुराई भलाई दूसरे से उसकी गैबत में (पीठ पीछे) न करे और न दूसरों की बुराई सुनने की आदत रक्खे।

(१६) बेफायदा लोभ और लालच न करे और बगैर जरूरत के दूसरे से कोई पदार्थ न माँगे और न देवे।

(१७) अपनी मान बड़ाई के वास्ते कोई काम दिखावे का न करे। परमार्थ में ऐसी करतूत निष्फल[5] समझी जाती है। जो काम या सेवा करे, वह गुरु और मालिक की प्रसन्नता के वास्ते निरअहंकार[6] और चित्त में दीनता रख कर करे।

१—अच्छी तरह। २—तुच्छ। ३—निकम्मा। ४—बेफायदा। ५—बिना अहंकार।

राधास्वामी मत के अभ्यासी को इन संजमों की सम्हाल रखना चाहिये

१२०—जो कोई राधास्वामी मत में शामिल होवे और उसके मुआफिक अभ्यास शुरू करे, उसको यह संजम, वास्ते दुरुस्ती से करने अभ्यास सुरत शब्द मार्ग के, दरकार[1] हैं:—

(१) माँस अहार न करे और न कोई नशे की चीज पीवे या खावे। हुक्का पीना नशे में दाखिल नहीं है।

(२) मामूली खाने से आहिस्ता आहिस्ता करीब चौथाई हिस्से के कम कर देवे, और बहुत चिकने चुपड़े और स्वाद के भोजन ज़्यादा न खावे।

(३) सोने में भी कुछ कमी करे, यानी आम तौर पर छः घंटे से ज़्यादा न सोवे।

(४) संसारी लोगों से जरूरत के मुआफिक मेल और बर्ताव करे। उनसे ज़्यादा मेल न रक्खे और बगैर जरूरत के किसी के संसारी मामले में दखल न देवे।

(५) संसारी पदार्थ और इन्द्रियों के भोगों की चाह फजूल न उठावे और न उनके वास्ते फजूल जतन करे, बल्कि जो भोग और पदार्थ मुयस्सर आवें, उनमें भी जिस क़दर मुनासिब होवे, अहतियात[2] के साथ बर्ताव करे।

(६) वक्त अभ्यास के बेफायदा ख़्याल दुनिया और उसके पदार्थों और भोगों के न उठावे और जो पुरानी आदत के मुआफिक ऐसी गुनावन मन में पैदा होवे, तो उसको, जिस कदर जल्दी बने, दूर हटावे, नहीं तो अभ्यास में रस नहीं मिलेगा।

(७) सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल और गुरू का किसी क़दर खौफ

१—जरूरी। २—होशियारी।

दिल में रक्खे और उनकी प्रसन्नता में अपनी बेहतरी समझे और नाराजी में नुकसान परमार्थ और स्वार्थ का। और उनके चरनों में दिन दिन प्रीति और प्रतीति बढ़ाता रहे।

(८) जहां तक मुमकिन होवे, किसी जीव से विरोध और ईर्षा दिल में न रक्खे।

(९) पुण्य कर्म मुआफिक दफा ८४ से ८८ तक के, जिस कदर बन सके, करे और पाप कर्म से, जहां तक बने, बचता रहे।

(१०) राधास्वामी दयाल की दया का हर दम भरोसा मन में रखकर अपना अभ्यास नियम से हर रोज दो बार या ज्यादा करता रहे। और पोथियों का भी थोड़ा पाठ किया करे कि उससे अभ्यास और मन और इन्द्रियों की दुरुस्ती में मदद मिलेगी।

(११) सतसंग में शामिल होने का हमेशा शौक रक्खे और जब मौज से मौका मिले, तब चेत कर होशियारी से वचन सुने और उनका मनन करके, अपने लायक के वचन छांट कर, उनके मुआफिक कारवाई और बर्ताव शुरू करे।

(१२) अपने मन और इन्द्रियों की चाल की निरखता चले, यानी मन की चौकीदारी करे कि नाकिस और पाप कर्मों और ख्यालों में न जावे और जहां तक बने, मन और माया के हाथ से धोखा न खावे।

(१३) सच्चे परमार्थी यानी प्रेमी जन से मुहब्बत करे और जब वे मिल जावें, तो शौक के साथ उनका संग और खातिरदारी और जो मौका होवे, तो मेहमानदारी करे।

(१४) अपने वक्त का ख्याल रक्खे कि जहां तक मुमकिन होवे फजूल और बेफायदा कामों और बातों में मुफ्त खर्च न होने पावे।

(१५) जबकि कुल मालिक राधास्वामी दयाल को सर्व समर्थ और सर्वज्ञ समझा, तो जो कुछ कि स्वार्थ और परमार्थ के मामले में पेश आवे,

१—भलाई।

उसको उनकी मौज समझना चाहिए, और चाहे वह मन के मुआफिक होवे या नहीं, उस मौज के साथ मुआफिकत करना[1] चाहिए, यानी तकलीफ को धीरज के साथ बरदाश्त करना चाहिए और तरक्की यानी सुख में परमार्थ से गाफिल होना नहीं चाहिए।

खुलासा कुल वचन का

१३०—जोकि यह वचन बहुत तूल यानी लम्बा हो गया है, इस वास्ते मुनासिब है कि इसका खुलासा थोड़ी दफों में लिख दिया जावे, ताकि असली मतलब इस वचन का पढ़ने वालों की समझ में जल्द आ जावे और थोड़ा बहुत याद रहे।

(१) राधास्वामी मत सत्त मत है।

(२) राधास्वामी नाम कुल और सच्चे मालिक का नाम है।

(३) यह नाम किसी ने नहीं धरा। इसकी धुन आप हर एक स्थान पर हो रही है, यानी यह धुन्यात्मक नाम है और इसको संत और साध जन और प्रेमी अभ्यासी सुनते हैं।

(४) राधा नाम आदि धार का है, जो कुल मालिक यानी स्वामी के चरन से निकली। और स्वामी नाम शब्द का है, जिसमें से धुन या धार निकली और वही धुन या धार सुरत है। इस वास्ते राधास्वामी नाम के अर्थ सुरत शब्द के समझने चाहियें।

(५) जब तक कोई इस नाम को मय इसके भेद के अपने हिरदे में नहीं बसावेगा, तब तक उसको अभ्यास में मदद पूरे तौर से नहीं मिलेगी और न धुर मुकाम तक का रास्ता निर्विघ्न[2] तै कर सकेगा।

(६) आदि[3] धार जो राधास्वामी दयाल कुल मालिक के चरनों से निकली, वही नूर[4] और जान और शब्द की धार है और उसी ने जगह जगह ठहर कर और मंडल बाँध कर सत्तलोक तक रचना करी। और

१—मुआफ़िक़त करना—मेल मिलाना। २—बिना विघ्न के। ३—प्रथम। ४—प्रकाश।

फिर वहाँ से दो धारों ने, यानी निरंजन ज्योति ने उतर कर ब्रह्मांड की रचना, और महमदलकँवल से तीन धारों ने (जिनको सतोगुन, रजोगुन और तमोगुन कहते हैं) उतर कर पिंड देश की रचना करी। खुलासा यह है कि कुल रचना शब्द की धार ने करी है, और शब्द ही कुल मालिक का प्रथम जहूर यानी प्रकाश है और सब जगह शब्द ही चैतन्य का निशान और जहूरा है।

(७) शब्द की धुन या धार का नाम सुरत है और यह दोनों, यानी सुरत और शब्द, कुल रचना और उसकी कारवाई कर रहे हैं।

(८) इस लोक में भी कुल काम शब्द (यानी बोलने वाला) और सुरत (यानी सुनने वाला) कर रहे हैं।

(९) जब बच्चा पैदा होता है और उसने शब्द किया, यानी रोया, तो जिन्दा है और जब तक आदमी बोलता है तो जिन्दा है, नहीं तो मुर्दा है।

(१०) सुरत की धार उतर कर दोनों आखों के मध्य में अन्दर की तरफ छोटे चक्र के स्थान पर इस जिस्म यानी देह में ठहरी है, और वहीं से दो धार हो कर दोनों आखों में, जाग्रत के वक्त, बैठकर इस लोक में मन और इन्द्रियों के वसीले से कारवाई करती है।

(११) सुरत चैतन्य सतपुरुष राधास्वामी दयाल की अंश है और मन निरंजन यानी काल पुरुष या ब्रह्म की अंश है और इन्द्रियां और देह माया की अंश हैं, यानी उसके मसाले से बनी हुई हैं।

(१२) आखों के स्थान से सुरत की धार को घर की तरफ, यानी कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों में, भिरह और प्रेम अंग लेकर उलटाना चाहिए। तब सच्चा और पूरा उद्धार होगा और इसी कारवाई का नाम सच्चा परमार्थ है।

(१३) इसी उलटाने को सुरत शब्द का अभ्यास कहते हैं, और असली मतलब राधास्वामी मत का यही है कि जीव यानी सुरत को, जो सतपुरुष राधास्वामी दयाल के चरनों से जुगानजुग से जुदा हो

गई है और यहाँ देह और मन और इन्द्रियों का संग करके दुख सुख भोग रही है, फिर उलटा कर उसके निज घर में, जो महा प्रेम और महा आनन्द का आदि भंडार है और जहाँ काल क्लेश और माया का बीज भी नहीं है, पहुँचाना ताकि अमर अजर और महा सुखी हो जावे और जनम मरन और देहियों के दुख सुख के क्लेश से उसका हमेशा को बचाव हो जावे।

(१४) कुल रचना के तीन दर्जे हैं। पहला, निर्मल चैतन्य देश और इसी को संत देश और दयाल देश कहते हैं। यहाँ माया बिलकुल नहीं है और इसी सबब से यह देश अमर और अजर है और महा सुख और परम आनन्द का भंडार है। दूसरा, निर्मल चैतन्य और शुद्ध माया देश। इसी दर्जे के शुरू में माया का जहूर हुआ लेकिन इस दर्जे में वह निहायत लतीफ़[1] है। इसको ब्रह्मांड कहते हैं। तीसरा, निर्मल चैतन्य और मलीन माया देश। यहाँ मलीनता ज़्यादा है और यहाँ की रचना भी इस वास्ते स्थूल है। इस दर्जे को पिंड देश कहते हैं।

(१५) जिस वक्त पुतली आंखों की जगह चढ़ जाती है, आदमी फौरन बेहोश हो जाता है और जब ज़्यादा खिंच जाती है, तब मर जाता है। तो इससे जाहिर है कि देही और मन और इन्द्रियों और संसार के बंधनों से छुटकारा इसी रास्ते से सुरत के उलटाने यानी चढ़ाने से मुमकिन है, यानी सच्ची मुक्ति और उद्धार इसी जुगत की कमाई से मुमकिन है, और किसी तरह नहीं।

(१६) जिस क़दर बाहरमुख करनी परमार्थ के नाम से और मतों में जारी है, वह असल में मुक्ति का साधन नहीं है, बल्कि सब भर्म है।

(१७) और जो कोई साधन प्राणों के साथ या किसी और धार के साथ चढ़ाई का है, पहले तो वह ऐसा कठिन है कि किसी से बन नहीं सकता और जो किसी विरले जीव से बन भी गया, तो वह अभ्यासी माया के घेर से बाहर नहीं जावेगा, क्योंकि सिवाय शब्द की धार के

१—सूक्ष्म।

और सब धारें जिस कदर कि हैं, वे ब्रह्मांड से जारी हुई हैं, यानी जहाँ से कि माया का जहूर होकर माया और चैतन्य ने मिलकर रचना करी है। इस सबब से जो कोई इन धारों पर सवार हो कर चलेगा, वह माया के घेर में रहेगा और देह के बधनों और जनम मरन से उसका छुटकारा नहीं होगा।

(१८) माया सुरत चैतन्य की धार का खोल और गिलाफ हो रही है, यानी जिस कदर माया में सूक्ष्म और स्थूल वगैरह दर्जे हैं, उसी कदर गिलाफ सुरत पर चढ़े हुए हैं। और यही गिलाफ या खोल देही कहलाते हैं और इन्हीं गिलाफों का, सुरत के वियोग यानी जुदाई से, बेकार हो जाने का नाम मौत है। इस वास्ते जब तक सुरत माया के देश में रहेगी, तब तक गिलाफ में रहेगी और इस सबब से जनम मरन उसका, चाहे जल्दी होवे या देर से, जारी रहेगा। इस वास्ते संत फरमाते हैं कि जब तक सुरत संत देश अथवा दयाल देश, यानी निर्मल चैतन्य देश में जहां माया बिलकुल नहीं है, न पहुँचेगी, तब तक सच्चा और पूरा उद्धार न होगा।

(१९) यह उद्धार सिर्फ सतगुरु और शब्द भक्ति से हो सकता है, और किसी की भक्ति या दूसरे किस्म के अभ्यास से हासिल नहीं हो सकता है। और संत मत के अभ्यासी को प्रेम और शौक के साथ करनी शुरू करना मुनासिब है, क्योंकि बगैर प्रेम और शौक के अभ्यास में आसानी नहीं होवेगी और जैसा चाहिए रस भी नहीं आवेगा।

(२०) हर एक आदमी को, चाहे औरत होवे या मर्द, वास्ते अपने सच्चे और पूरे उद्धार के, सुरत शब्द का अभ्यास करना जरूर और मुनासिब है और इसी को सच्चा परमार्थ कहते हैं। बाकी जिस कदर बाहरमुख पूजा और अभ्यास है, जिसका अंतर से सिलसिला नहीं लगा हुआ है, वह भरम है। उससे जीव का सच्चा और पूरा कल्यान नहीं होगा, अलबत्ता शुभ कर्म का फल मिलेगा, यानी थोड़े अरसे के वास्ते सुख स्थान मिल जावेगा। और जो अशुभ कर्म बनेगा, उसकी एवज में दुख भोगना पड़ेगा।

(२१) कर्म का स्थान आँखों का मुक़ाम है, यानी जब सुरत जाग्रत अवस्था में आँखों के स्थान पर बैठती है, तब मन और इन्द्रियों में बाहरमुखी करतूत बनती है। और संत फरमाते हैं कि जैसे बने जीव को चाहिए कि भक्ति और अभ्यास करके आँखों के स्थान से आहिस्ता आहिस्ता सरकता जावे, यानी ऊपर और अन्दर की तरफ चलना शुरू करे। तो जिस क़दर चाल चलेगी, उसी क़दर कर्म थकता और घटता जावेगा और रफ़्ता रफ़्ता एक दिन जीव निःकर्म[1] हो जावेगा।

(२२) संतों ने कर्म की दो किस्म करी हैं—एक जो इस जीव की जात यानी आप से ताल्लुक़ रखता है और दूसरा, जिसका ताल्लुक़ औरों के साथ व्योहार से है। पहली किस्म यह है कि जिस करतूत करके यह जीव अपने मालिक के नजदीक पहुँचता जावे, वह असली यानी परमार्थी शुभ कर्म है और जो करतूत कि इसको अपने मालिक के चरनों से दूर डाले, वही असली यानी परमार्थी अशुभ कर्म है। दूसरी किस्म यह है कि औरों के साथ मन वचन और कर्म करके इस तरह बर्ताव करे कि जैसे यह जीव चाहता है कि और लोग इसके साथ बर्ताव करें। यह व्योहारी शुभ कर्म है और इसके खिलाफ बर्ताव करना व्योहारी अशुभ कर्म। परमार्थी जीवों को मुनासिब है कि ऊपर के कायदे के मुआफिक अपने जाती और व्योहारी कर्म का दुरुस्ती से बर्ताव करें।

(२३) और मतों में बाहरमुखी कर्म का बहुत विस्तार किया है। सबब इसका यह है कि सच्चे और कुल मालिक की भक्ति की रीति और महिमा उनको मालूम नहीं हुई और न सुरत शब्द अभ्यास की खबर हुई कि जिससे जीव बहुत जल्द कर्म के घेर से निकल कर अपने निज घर की तरफ जा सकता है। और जो कर्मों के बखेड़े में पड़ा रहा, तो चाहे उससे व्योहारी शुभ कर्म बने या अशुभ, उसका हिसाब काल और माया के संग कभी बेबाक[2] नहीं हो सकता है। और इस वास्ते जनम मरन और दुख सुख के फंदे से रिहाई मुमकिन नहीं है।

(२४) जिन मतों में कि सिर्फ बाहरमुखी पूजा या पोथियों का

१—कर्मों से निर्लेप। २—साफ़।

पढ़ना और पढ़ाना जारी है और घट के भेद से बेखबरी है, उनकी कुल कार्रवाई व्योहारी शुभ या अशुभ कर्म में दाखिल है। उससे मुक्ति हासिल नहीं हो सकती।

(२५) और जिन मतों में थोड़ा अन्तर अभ्यास जारी है और वह वर्णात्मक नाम का सुमिरन या ध्यान किसी देवता या औतार या परमेश्वर का या मुद्रा[1] का साधन है और स्थान उस अभ्यास का छः चक्र के अंदर है और संतों के धाम का भेद मालूम नहीं है, तो भी वह सच्ची मुक्ति का साधन नहीं है। अलबत्ता सुख स्थान कुछ काल के वास्ते मिलेगा और फिर जनम मरन के चक्कर में आना पड़ेगा।

(२६) जो लोग कि ज्ञानी या वेदान्ती या सूफी कहलाते हैं और अपने को ब्रह्म मानते हैं, पर कोई अभ्यास ब्रह्म पद में पहुँचने का नहीं करते और न भेद से ब्रह्म पद और उसके रास्ते से वाकिफ[2] हैं, यह भी जनम मरन के चक्कर से नहीं बच सकते। ऐसा ज्ञान वाचक कहलाता है। बगैर मन और सुरत की चढ़ाई के (संतों के अभ्यास के मुआफिक) हालत नहीं बदल सकती और न ब्रह्म पद की प्राप्ति हो सकती है, क्योंकि प्राणायाम का अभ्यास बसबब उसकी कठिनता के त्याज्य है, और कोई दूसरे अभ्यास से यह मतलब हासिल नहीं हो सकता। और यह वाचक ज्ञानी और सूफी, अपनी विद्या और बुद्धि के अहंकार में संतों का वचन नहीं मानते, इस सबब से खाली रह गए।

(२७) नास्तिक और और मत जो विद्यावानों ने जारी किये हैं, इनमें तो कोई परमार्थी बात नहीं है। सिर्फ पर उपकार का उपदेश है और कुल मालिक की मौजूदगी से इनकार है। फिर यह लोग क्या भक्ति और अभ्यास कर सकते हैं? इस वास्ते इनका उद्धार किसी तरह मुमकिन नहीं है।

(२८) रचना का हाल गौर से नजर करने से साफ जाहिर होता है

१—मुद्राएँ पाँच हैं—चाचरी, भूचरी, खेचरी, अगोचरी और उन्मुनि।
२—परिचित।

कि कोई कुल और सच्चा मालिक जरूर है, क्योंकि हर एक चीज में कारीगरी और मतलब और इरादा समर्थ बनाने वाले का जाहिर है। और यह जीव उसी कुल मालिक समर्थ दयाल का अंश है, यानी उसका और जीव का जौहर एक ही है। फिर जो लोग कि इस बात को नहीं मानते हैं, वे अपना भारी नुकसान करते हैं और अंत को बहुत पछतावेंगे।

(२९) जो लोग कि तीर्थ, व्रत और मूरत, मंदिर और औतारों और देवताओं की पूजा में अटक रहे हैं और घट के भेद और संत मत की जुगत से वाकिफ हैं और न उसकी तलाश और खोज करते हैं, उनका भी सच्चा उद्धार नहीं हो सकता। वे कर्म का फल अलबत्ता पावेंगे, पर सच्चे मालिक के दरबार में नहीं पहुंच सकते, बल्कि उस औतार और देवता के असल रूप का भी, जैसा कि उसके लोक में है, दर्शन नहीं मिलेगा क्योंकि अपनी जिन्दगी में असल का खोज नहीं किया, फिर मरने के बाद भी नकल का ही दर्शन पावेंगे, क्योंकि सच्ची लगन और किसी कदर प्रतीति के साथ मूरत की पूजा करी होगी। और जो रस्मी परमार्थ के तौर पर कार्रवाई की है, तो नकली रूप की भी प्राप्ति नहीं होगी।

(३०) सच्चे परमार्थी को चाहिये कि भेदी और अभ्यासी गुरु खोज कर और उनकी थोड़ी पहचान करके सुरत शब्द मार्ग के अभ्यास में लग जावे और जो संजम कि बताये गये हैं, उनके मुआफिक कार्रवाई अपनी दुरुस्त करता जावे। तब जो कुछ कि वचन संतों ने कहे हैं, उनकी तसदीक अंतर में वह आप करता जावेगा और कुल मालिक की दया भी अपने अंतर में परखता जावेगा। इस तरह उसकी प्रीति और प्रतीति चरनों में दिन दिन बढ़ती जावेगी और एक दिन अपने मालिक के चरनों में पहुँच जावेगा।

पुस्तकों का सूचीपत्र

ये पुस्तकें मैनेजर पब्लीकेशन्स, दयालबाग़ (आगरा) से मिल सकती हैं

	नाम		मूल्य
	परम गुरु स्वामीजी महाराज रचित		
१	सारवचन (पद्य)	हिन्दी	७.००
२	सारवचन (गद्य)	,,	(प्रेस में)
	परम गुरु हुज़ूर महाराज रचित		
३	राधास्वामी मत प्रकाश	अंगरेज़ी	१.५०
४	पिलग्रिम्स पाथ (हुज़ूर महाराज के पत्र)	,,	१.५०
५	राधास्वामी मत संदेश	हिन्दी	१.००
६	राधास्वामी मत उपदेश	,,	१.००
७	निज उपदेश	,,	१.००
८	प्रेम उपदेश	,,	१.००
९	सार उपदेश	,,	१.२५
१०	प्रश्नोत्तर	,,	१.००
११	जुगत प्रकाश	,,	२.००
१२	प्रेमबानी भाग १	,,	५.००
१३	,, भाग २	,,	४.००
१४	प्रेमबानी भाग ३	हिन्दी	४.००
१५	,, भाग ४	,,	२.५०
१६	प्रेमपत्र भाग १	,,	४.००
१७	,, भाग २	,,	४.००
	परम गुरु सरकार साहब रचित		
१८	प्रेम-समाचार	,,	१.२५
	राधास्वामी सतसंग सभा के स्वत्वाधिकार में अनुवादित पुस्तकें		
१९	राधास्वामी मत प्रकाश	बंगला	१.२५
२०	अमृतवचन	,,	३.००
	(परम गुरु महाराज साहब रचित पुस्तक 'डिस्कोर्सेज़ आन राधास्वामी फ़ेथ' का अनुवाद)		
	परम गुरु स्वामीजी महाराज रचित		
२१	सारवचन	अंगरेज़ी	३.२५

	नाम			मूल्य
	परम गुरु हुज़ूर महाराज रचित			
२२	प्रेम पत्र भाग १		अंगरेज़ी	६.००
२३	,, भाग २		,,	६.००
२४	,, भाग ३		,,	६.००
२५	,, भाग ४		,,	६.००
२६	,, भाग ५		,,	६.००
	हुज़ूर साहबजी महाराज रचित			
२७	यथार्थ प्रकाश भाग १	(विशेष संस्करण)	अंगरेज़ी	६.००
२८		(साधारण संस्करण)	,,	३.५०
२९	,, भाग २		,,	५.५०
३०	,, भाग ३	(प्रथम पुस्तक)	,,	५.५०
३१	,,	(द्वितीय पुस्तक)	,,	४.००
३२	जिज्ञासा		,,	१.००
३३	राधास्वामी मत दर्शन		,,	१.००
३४	प्रेम संदेश		,,	१.००
३५	डिस्कोर्सेज़ भाग १ (सतसंग के उपदेश)		,,	४.००
३६	,, भाग २		,,	४.००
३७	,, भाग ३		,,	३.५०
३८	जतन प्रकाश		,,	१.००
३९	सिलैक्शन्स फ्राम प्रेम सन्देश		,,	१.००
	राधास्वामी सतसंग सभा के स्वत्वाधिकार में सम्पादित या लिखित पुस्तकें			
४०	फोर लैटर्स (हुज़ूर सरकार साहब)		,,	(प्रेस में)
४१	सिलवरी स्पीचेज़		,,	०.२५
४२	शब्द संग्रह भाग १		हिन्दी	३.५०
४३	,, ,, भाग २		,,	३.५०
४४	संत बानी संग्रह भाग १		,,	१.००
४५	संत बानी संग्रह भाग २		हिन्दी	१.२५
४६	रत्नावली		,,	१.००
४७	दयालबाग़ पैम्फ्लेट (छोटा)		अंगरेज़ी	०.३७